R.N.I. No. 2321/57

रजि. सं. MTR नं. 004/2019-21

सितम्बर 2020

अंक 8

ओ३म्

तपोभूमि

मासिक

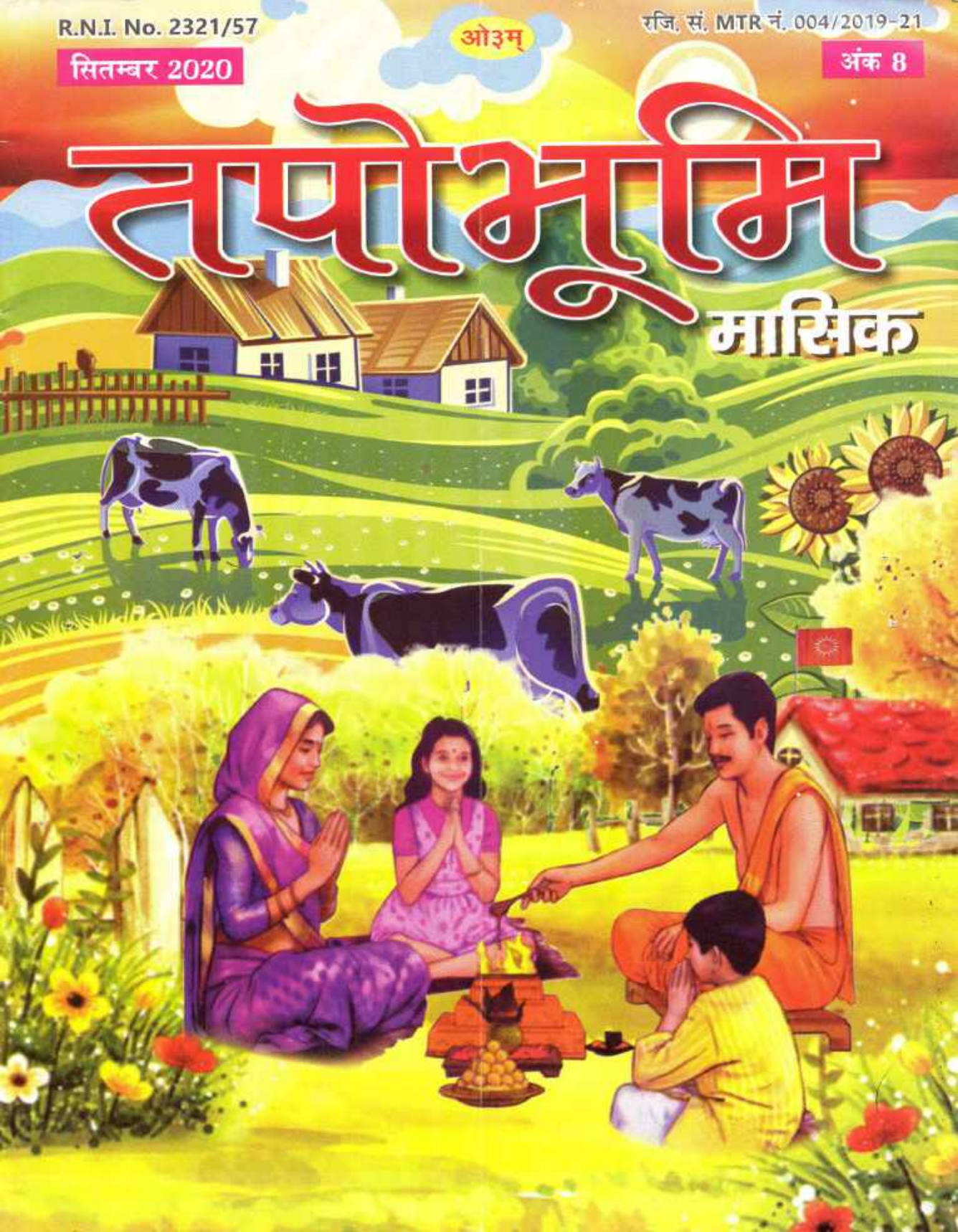

सम्पादकीय

तप हीन जीवन नरक का द्वार है।

तप की महिमा हमारी संस्कृति में सर्वत्र गायी गई है संसार में स्वर्ग जैसा सुख चाहते हो तो तप उसका एक मात्र साधन है। योग दर्शन के रचयिता महर्षि पतंजलि का मानना भी था कि केवल ज्ञान प्राप्त करने से जीवन में फल मिलने वाला नहीं, ज्ञान के साथ कर्म करे और कर्म भी योग युक्त कर्म हो जिसे क्रियायोग नाम दिया गया है। क्रियायोग के विषय में स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं कि–

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः।

अर्थात् क्रिया योग में प्रथम स्थान पर को ही दिया है। प्राचीन काल में वेद विद्या के रहस्य को समझाने वाले ऋषि अपने शिष्यों को यही बताते थे कि सृष्टि के सृजन में तप का बड़ा महत्व है। हम आर्यों के दैनिक सन्ध्या में इस बात का उल्लेख है कि **ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत** ऋत और सत्य रूप संसार ईश्वर ने तप से उत्पन्न किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जब मध्यकाल आर्यजाति के घोर पतन का काल था। तब भी तप की महिमा का प्रभाव निरन्तर देखा गया। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में पार्वती के तप का स्मरण करते हुए नारद मुनि के मुख से पार्वती को उपदेश दिलवाते हुए लिखा है कि–

तप बल रचिय प्रपंच विधाता, तप बल विश्व सकल जगत्राता।
तप बल शम्भु करें संहारा, तप बल शीश धरहिं महि भारा।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी, करहु जाय तप यह जिय जानी।

अर्थात् सारा ब्रह्माण्ड ही तप के सहारे खड़ा है। अतः जीवन को स्वस्थ आनन्दमय बनाने के अभिलाषियों के लिए आवश्यक है कि वे तप की वास्तविकता को समझें।

आज हमारे समाज ने इस परम सुख के साधन तप को एक किनारे रख दिया। हम चाहते हैं हमारे बच्चे अच्छे हों स्वस्थ हों बलवान हों विद्वान् हों। पर उनको ऐसा बनाने के लिए न हम तप करने को तैयार हैं न बच्चों को कराने को तैयार हैं। हमें सुख तीन प्रकार से मिलता है शरीर से, वाणी से और मन से। हमने तीनों साधन नष्ट कर दिये बिना तप के। हमारे शरीर बिना तप के रोगों का भण्डार बने हुए हैं। सुबह से लेकर शाम तक हम ए. सी. से अपना वियोग नहीं होने देना चाहते हैं। घर में ए. सी., गाड़ी में ए. सी., कार्यालय में ए. सी. इससे शरीर का पसीना निकलना बन्द हो गया जो तप करने से भरपूर निकल जाता है और सारा शरीर मल रहित शुद्ध व हल्का हो जाता है। अब बिना तपस्या के पसीना आता नहीं है। सारे विषाक्त तत्व शरीर में स्थिर हो गये हैं तो शरीर में अनेकों बीमारियाँ आकर डेरा जमा लिया है। शरीर स्वस्थ नहीं है वाणी और मन का भी यही हाल हो गया है। अतः मन भी अस्वस्थ हो गया जहाँ शारीरिक बल घटा वहाँ मानसिक बल भी घट गया। हमारे अन्दर से तप करने की दृढ़ता आती है। वह सब तरह से समाप्त हो गई और जैसे हम हैं तो हमारी सन्तान भी वैसी हो गई। तप का उल्टा पत होता है जब तप नहीं किया हो हमारा सब ओर पत हो जाता है। जीवन में तप करने से दृढ़ता आती है वही जीवन में आये दुःखों का हंसते-हंसते सहन करने का आधार होती है। आज तप हीन जीवन से दुर्दशा हम अपने चारों देखते हैं प्रातः समाचार पत्र पढ़ा तो देखता ही रह गया एक अधिकारी पिता ने पुत्र को गोली मारी साथ ही स्वयं ही आत्महत्या कर ली। किसी बेटी ने अपने पिता की

शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्०)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–66 संवत्सर 2077 सितम्बर 2020 अंक 8

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादक:
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

सितम्बर 2020

सृष्टि संवत्
1960853120

दयानन्दाब्द: 196

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा (उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाष:
0565–2406431
मोबा0 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4–5
मानस में संस्कार	–रामस्वरूप आर्य	6–8
स्वास्थ्य चर्चा	–	9
गीता दर्शन	–डॉ0 सत्यदेव सिंह	10–13
जीवन में यज्ञों का महत्व	–विश्वेन्द्रार्य	14–16
महर्षि देव दयानन्द में मानवता कूट–कूट कर भरी थी	–खुशहालचन्द्र आर्य	17–20
सृजनवृत्ति अपनाइए–धरा स्वर्ग बन जाएगी	–यशपाल आर्यबन्धु	21–23
नैतिकता और छात्र	–डॉ0 रमाकान्त दीक्षित	24–28
सत्यार्थ प्रकाश में नीति–तत्त्व	–डॉ0 त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा	29–32
कौन ?	–संसारचन्द 'प्रभाकर'	33–34
नैतिकता के स्वर	–अशोककुमार जसवाल	34

❁❁❁

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

लेखकः डॉ० रामनाथ वेदालंकार

जल–चिकित्सा

आपो अस्मान्मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि।।

–अथर्व0 6। 51। 2

शब्दार्थः–

(मातरः आपः) मातृरूप जलधाराएँ (अस्मान् सूदयन्तु) हमें शुद्ध करें, (घृतप्वः) क्षरण एवं तेज से पवित्र करनेवाली वे (घृतेन) क्षरण एवं तेज से (नः पुनन्तुः) हमें पवित्र करें। (देवीः) आकाशीय जलधाराएँ (विश्वं हि रिप्रिम्) सम्पूर्ण दोष या मल को (प्रवहन्ति) प्रवाहित कर देती हैं। (आभ्यः इत्) इनसे निश्चय ही (शुचिः पूतः) निर्मल और पवित्र होकर (आ एमि) आता हूँ।

भावार्थः–

वेद कहता है कि 'जलों के अन्दर सब औषध विद्यमान है। जो जलधाराएँ हिमालय की जड़ी–बूटियों के सत्त्व को अपने अन्दर लेकर नदियों में बहती हुई मैदान में आती हैं, उनके अन्दर सब औषधियों का सार होता ही है, किन्तु वेद की जल–स्तुति का यह आशय भी है कि जो शुद्ध जल होते है।, उनमें जड़ी बूटियों के सम्पर्क बिना भी सब औषध विद्यमान रहते हैं। तात्पर्य यह है कि सब ओषधियों के द्वारा जो रोग दूर किये जा सकते हैं, वे केवल जल–चिकित्सा से भी नष्ट हो सकते हैं। प्रस्तुत मंत्र में 'आपः' को 'माता' कहा गया है। जैसे माता अपना पयःपान कराकर सन्तान को स्वस्थ एवं पुष्ट करती है, वैसे ही जल भी कर सकते हैं, अतएव उन्हें माता कहा गया है। वे जलधारारूपिणी माताएँ हमारे रोगों या दोषों को क्षरित करके हमें शुद्ध करें।

जलों के अन्दर 'घृत' भी रहता है। 'घृत' शब्द क्षरण और दीप्ति अर्थवाली घृ धातु से निष्पन्न होता है। अतः यहाँ घृत का अर्थ क्षरण और दीप्ति ही है। जलों में दोषों या रोगों को क्षरित करने का गुण एवं सौम्य दीप्ति दोनों विद्यमान रहते हैं। इन दोनों विशेषताओं से वे पवित्रता लाने का कार्य करते हैं, अतः उन्हें 'घृतप्वः' कहा गया है। वे 'घृतप्वः' जलधाराएँ घृत से अर्थात् क्षरण एवं सौम्य दीप्ति के गुण से हमें पवित्र करें।

वर्षा से प्राप्त होने वाली अन्तरिक्ष की जल-धाराएँ 'देवी' कहलाती हैं। उनमें पार्थिव मलिनताएं नहीं होती हैं, उनमें वाष्प का जल होने से वे शुद्ध होती हैं। उनके द्वारा चिकित्सा करने से शरीर का सब मल या दोष बह जाता है, ऐसा मन्त्र में कहा गयाहै। रोगी कहता है कि इनके द्वारा इलाज करके मैं शरीर से शुद्ध (शुचिः) और मन से पवित्र (पूतः) होजाता हूँ। इससे सूचित होता है कि जल शारीरिक और मानस दोनों प्रकार के रोगों की दवा हैं।

'अप' शब्द स्त्रीलिंग तथा नित्य बहुवचनान्त है। इसी शब्द का प्रथमा-बहुवचन में 'आप' रूप बनता है। स्त्रीलिंग होने से इनका माता होना तथा बहुवचनान्त होने से बहुत गुणों से समन्वित होना सूचित होता है। अथर्ववेद में 'आपः' देवता के मन्त्र कई सूक्तों में हैं, उनमें से कुछ सूक्त सम्पूर्ण 'आपः' देवता के ही हैं, तथा कुछ में 'आपः' देवता के कतिपय मन्त्र ही हैं। इनमें जलों को रोगनाशक (अमीवचातनीः), सुखदायक (स्योनाः), सब रोगों की दवा (विश्वभेषजीः), हृदयरोगशामक (हृद्द्योतभेषजम्), चिकित्सकों में सर्वश्रेष्ठ (भिषजां सुभिषक्तमाः), नीरोग करनेवाले (अयक्ष्मंकरिणीः) आदि कहा गया है। एक सूक्त में गुण-कर्मों की दृष्टि से जलों के भेद हैमवतीः, उत्स्याः, सनिष्यदाः, वर्ष्याः, धन्वन्याः, अनूप्याः, खनित्रिमाः, दिव्याः, स्रोतस्याः किये गये हैं। आजकल प्राकृतिक चिकित्सा में जल-चिकित्सा का अच्छा प्रचार है। ❁

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से विनम्र निवेदन है जिन्होंने वर्ष **2018 और 2019 का वार्षिक शुल्क** बार-बार के पत्र लेखन तथा फोन द्वारा सूचना देने के बाद भी अभी तक जमा नहीं कराया है। वे वर्ष 2020 के वार्षिक शुल्क के साथ अविलम्ब **'सत्य प्रकाशन'** वेदमन्दिर, वृन्दावन मार्ग, मथुरा के कार्यालय को जमा करायें। शुल्क जमा न होने की स्थिति में पत्रिका बन्द कर दी जायेगी। आशा और विश्वास है कि पाठकगण अविलम्ब शुल्क भेजकर अपनी पत्रिका समयानुसार प्राप्त करते रहेंगे। जो महानुभाव ऑन लाइन द्वारा शुल्क जमा करते हैं वे फोन द्वारा कार्यालय को सूचित अवश्य करें ताकि उनका शुल्क जमा किया जा सके। वे पाठकगण धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने समय से वर्ष 2020 का शुल्क जमा किया है। **-व्यवस्थापक**

सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार करना राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

मानस में संस्कार

लेखकः रामस्वरूप आर्य, एटा (उ. प्र.)

मानव जीवन की उत्तरोत्तर वृद्धि, शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिये धर्मशास्त्रों ने षोडश (16) संस्कारों की व्यवस्था दी है। जिसका महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने अपने अमूल्य ग्रन्थ "संस्कार विधि" में विधिवत् वर्णन किया है। बिना संस्कार की हुई कोई भी वस्तु व्यावहारिक जीवन में उपयोगी नहीं होती। फिर ये मनुष्य जीवन जो सर्वोत्कृष्ट है इसकी महानता का मूल कारण संस्कार ही है। इतिहास साक्षी है कि राम, कृष्ण, भरत, शत्रुघ्न, छत्रपति शिवाजी, तथा महाराणा प्रताप, वीर अर्जुन, अभिमन्यु जैसी सन्तानें संस्कारों की ही देन थे। भले ही हम ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के घर में जन्म धारण करें, किन्तु जन्म के समय हम सभी शूद्र ही होते हैं। संस्कार होने पर ही द्विज बनते हैं।

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।
वेद पाठी भवेद् विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः।। -मनु0

अर्थात् शरीर जन्म से सभी शूद्र-ज्ञान क्रिया हीन उत्पन्न होते हैं। संस्कार रूपी द्वितीय जन्म से ही द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बनते हैं। जो नित्य निष्काम भाव से वेद पाठ करता है, वह विप्र होता है, तथा जो ब्रह्म को जानता है, वही ब्राह्मण होता है।

किसी राष्ट्र अथवा मानव समाज को संस्कार ही उच्च आदर्श तक पहुँचाते हैं। यह ध्रुव सत्य है कि व्यक्तित्व निखार में संस्कार ही एक मात्र साधन हैं। इन संस्कारों का क्रम प्रथम संस्कार गर्भाधान से प्रारम्भ होता है। क्रमानुसार ये संस्कार कब और कैसे किये जायें यह तो आप संस्कारविधि में ही देख पायेंगे। इन संस्कारों पर वैदिक विद्वानों ने बहुत कुछ लिखा है। मैं मात्र संस्कारों के नाम के साथ-साथ थोड़ा सा दिग्दर्शन करा रहा हूँ। प्रथम-गर्भाधान, द्वितीय-पुंसवनः- यह संस्कार गर्भिणी स्त्री को प्रसन्न रखने को तथा वीर्य की रक्षा को किया जाता है। तृतीय सीमन्तोनयन-यह संस्कार छठवें अथव आठवें मास में गर्भस्थ शिशु तथा गर्भ की प्रत्येक प्रकार से रक्षा को किया जाता है। चतुर्थ-जातकर्म संस्कारः- बाल के पैदा होने पर पिता शिशु की जिह्वा पर घृत और शहद मिलाकर सोने की शलाका से जीभ पर लिखे तथा दक्षिण कर्ण पर अपना मुँह रखकर कहे "त्वं वेदोऽसि अर्थात् तेरा गुप्त नाम वेद है, ज्ञानवान है। पंचमः- नामकरण। षष्टमः- निष्क्रमण संस्कारः- चौथे मास जब मन में प्रसन्नता हो तब बालक को बाहर लाकर वायु सेवन करावे। सप्तमः- अन्न प्राशन संस्कार है। इसमें छठवें मास में घृत शहद भात में मिलाकर बालक को पिलावें। अष्टमः- मुण्डन संस्कार। नवम कर्णभेदः- इस संस्कार में बालक के नासिका

और कर्ण का छेदन करावे। दशम:- यज्ञोपवीत (जनेऊ):- संस्कार मानव जीवन की उन्नति हेतु ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य को समयानुसार कराना चाहिये। एकादश वेदारम्भ:- यह संस्कार गुरुकुल या विद्यालय में प्रवेश करते समय होता है। द्वादश:- समावर्तन:- यह संस्कार विद्यालय में पूर्ण शिक्षा प्राप्त करके जब ब्रह्मचारी स्नातक बन कर घर को आता है तब सम्पन्न होता है। त्रयोदश:- विवाह संस्कार। चतुर्दश:- वानप्रस्थ। पंचदश:- संन्यास। षोडश:- अन्त्येष्टि। उपरोक्त संस्कारों में से हम लोग कुछ ही संस्कारों को करते हैं। जब तक इन संस्कारों का देश वासियों ने महत्व समझा तब तक हमारी सन्तानों का चारित्रिक, मानसिक तथा शारीरिक विकास होता रहा। गोस्वामी जी महाराज के इष्ट देव भगवान राम भारतीय सभ्यता तथा चरित्र के धनी इन संस्कारों की ही देन थे। धन्य हो गई भारत वसुन्धरा ऐसे देव पुरुषों को पाकर। रामचरित मानस में गोस्वामी जी महाराज ने कुछ ही संस्कारों का वर्ण किया है। यद्यपि भगवान राम तथा उनके भ्राताओं के सभी संस्कार सम्पन्न हुए होंगे। किन्तु गोस्वामी जी महाराज ने अपने काव्य में मुख्यसंस्कारों का ही वर्णन किया है।

दोहा- नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी।
चूड़ा कर्म कीन्ह गुरू जाई। बिप्रन्ह पुनि दक्षिणा बहु पाई।।
भए कुमारज बहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरू पितु माता।
गुरु गृहँ गए पढ़न रघुराई। अल्प काल विद्या सब पाई।।
जस विवाह की विधि श्रुति गाई। महामुनिन सो सब करवाई।। -(बाल काण्ड)

इन थोड़े से ही संस्कारों का उल्लेख कर के गोस्वामी जी महाराज ने संस्कारों को जीवित रखने का भागीरथ प्रयत्न किया है। वेदारम्भ समय क यह चौपाई प्राचीन काल के गुरु-शिष्य के सम्बन्धों की याद दिलाती है। साथ ही गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की कितनी महत्ता थी इस बात काभी स्मरण हो आता है। बड़े-बड़े राजे महाराजाओं के पुत्र गुरुओं-आचार्यों के आश्रमों में विद्या-अध्ययन को भेजे जाते थे। उस समय गुरुओं के सम्मान का तो कहना ही क्या था। बड़े-बड़े सम्राट् आचार्यों को (राज) सिंहासन पर आसीन करके नतमस्तक होते थे। उस समय उन आचार्यों को धन की याचना नहीं करनी पड़ती थी। सारा व्यय राजकोष से ही होता था। बड़े-बड़े भवन नहीं होते थे। प्रकृति के शान्ति-मय वातावरण में वृक्षो की सघन छाया में विद्यालय विद्या प्रदान करते थे। ये थी हमारे देश की शिक्षा प्रणाली, तथा गुरु और शिष्य का सम्बन्ध, कहते हैं समय परिवर्तन शील है। महाभारत के काल तक उपरोक्त शिक्षा प्रणाली में कितना परिवर्तन आया तथा गुरु-शिष्य परम्परा भी जीर्ण जैसी हो गई। इसका उदाहरण महाभारत ग्रन्थ को पढ़ने से प्रतीत होता है। यद्यपि यह घटना-सर्वविदित है कि गुरु द्रोणाचार्य जी राजगृह में रह कर कौरव और पाण्डवों को शिक्षा-दीक्षा देते थे। भले ही गुरु द्रोणाचार्य जी का राजगृह

में रहकर कौरव और पाण्डवों को शिक्षित करने में निजी स्वार्थ रहा हो किन्तु वैदिक-शिक्षा प्रणाली पर तो यह कुठाराघात ही है। परमात्मा हमारे देश पर कृपा करके हम भारतीयों को साहस प्रदान करे जिससे हम प्राचीन परम्पराओं को अक्षुण्ण रखने को सदा प्रयत्नशील रहें। तो पुनः मनु महाराज का यह संविधान चरितार्थ हो उठे।

एतदेद्शप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।। -(मनु0)

इस भारत वर्ष की पवित्र धरिणी पर उत्पन्न हुए अग्रजन्मा ऋषियों की चरण-शरण में बैठकर पृथिवी के सभी मानव अपने-अपने चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें।

आज से करोड़ों वर्ष पूर्व महराज मनु ने यह शंखनाद इसलिये किया था कि गुरुभूमि भारत के मानव हृदय में इस उच्चादर्श की भावनायें सदा-सदा ही विद्यमान रहें। इतिहास साक्षी है कि यहाँ देश विदेशों के अनेकों राजकुमार तक्षशिला तथा नालन्दा विश्वविद्यालयों में विद्याभ्यास करने को आते थे। वर्षों आचार्यों के चरणों में बैठकर और उच्च शिक्षा प्राप्त करके, तदनुकूल जीवन में धारण करके संसार में आदर्श स्थापित करते थे। किन्तु परिवर्तन का यह चक्र अबाध गति से चल रहा है। यूरोप के देशों की भौतिक आंधी ने हमें भी अछूताा नहीं रहने दिया। प्रभु कृपा करें कि हम अपनी पैतृक धरोहर को अक्षुण्ण रखकर संस्कारों के गौरव की रक्षा कर सकें। ❁

बड़ा आदमी

लेखक: विजयकुमार बजाज, कैमोर

बहुत सालों बाद मैं अपने शहर लौटा था। यूं ही बातों-बातों में छोटे भाई ने बताया कि रमणीक भाई बहुत बड़े आदमी हो गये हैं। अरबपति नहीं तो करोड़पति तो अवश्य होंगे। बहुत आश्चर्य हुआ कि अचानक इतना परिवर्तन, इतना सब आया कहां से?

एक दिन सोचा, उनके घर जाकर देखना तो चाहिए कि यह जादू हुआ कैसे? तो पहुंच गया छुट्टी के दिन उनके घर। घर क्या एक आलीशान बंगला बनवा लिया था उन्होंने। जैसा फिल्मों में देखा था वैसा ही, बड़ा सा लॉन, लोहे का बड़ा सा गेट और गेट पर बड़ी-बड़ी मूछों वाला चौकीदार। बड़ी मुश्किल से तो मिल पाया उनसे। मैंने अपनी शंका का समाधान करना चाहा तो बोले सब ऊपर वाले की कृपा है।

-शेष पृष्ठ संख्या 16 पर

गतांक से आगे–

स्वास्थ्य चर्चा

लकवा–

1. रोगी को पुराना गोघृत थोड़ी–थोड़ी मात्रा में ऐसे ही या भोजन के साथ दिन में 3–4 बार दें। घी जितना पुराना होगा उतना ही अधिक लाभप्रद होगा।

2. बच मीठी 50 ग्राम, सोंठ और काला जीरा 20–20 ग्राम, तीनों को कूट–पीसकर चूर्ण बना लें। प्रतिदिन 3 ग्राम दवा शहद में मिलाकर रोगी को सेवन कराएँ। लकवे के लिए लाभप्रद है।

3. ओंघा (चिरचिटा) की जड़ 1 ग्राम, कालीमिर्च 1 नग, दोनों को 10 ग्राम गोदुग्ध में पीसकर नाक में टपकाएँ।

4. आक के पत्तों को तेल में पकाकर मर्दन करने से लकवा मिटता है।

5. उड़द को सोंठ के साथ काड़ा बनाकर पीने से लकवे की निवृत्ति होती है।

6. सोंठ और सब समभाग पीसकर शहद के साथ प्रातःसायं सेवन करने से लकवा दूर होता है।

वमनान्तक–

1. दस ग्राम चावल की धोवन लेकर उसमें जायफल को चन्दन की भांति घिसकर चटाएँ। 1–2 मात्रा में वमन मिट जाएगा।

2. दो या तीन नीबू के बीजों को छीलकर उत्तम गुलाब के जल में पीसकर पान कराएँ। वमन होना तुरन्त बन्द हो जाएगा।

3. नारियल की जटा जलाकर राख कर लें; एक ग्राम राख चटाकर 50 ग्राम पानी पिला दें। वमन रोकने के लिए अकसीर है। हैजा में भी लाभदायक है।

वाजीकारक–

भिण्डी की जड़ का चूर्ण 10 ग्राम प्रतिदिन दूध के साथ सेवन करें। अत्यन्त बल एवं शक्तिदाता है।

❀❀❀

गतांक से आगे–

गीता दर्शन

लेखकः डॉ0 सत्यदेव सिंह, अशोकासिटी, कृष्णानगर, मथुरा

गीता में सांख्य दर्शन की 'प्रकृति' को स्वीकार किया गया है इस 'प्रकृति' को गीता में 'अव्यक्त' तथा महद्ब्रह्म कहकर पुकारा गया है। सांख्य दर्शन में 'प्रकृति' से ही इस जगत् की उत्पत्ति बताई गई है, किन्तु गीता (सांख्य के) इस सिद्धान्त से सहमत नहीं होती। गीतानुसार प्रकृति से श्रेष्ठ व उससे बढ़कर ईश्वर है, जो प्रकृति का अध्यक्ष है, उसी की अध्यक्षता में प्रकृति इस जगत् को पैदा करती है। यदि परमात्मा या ईश्वर का संयोग न होता तो अचेतन जड़ प्रकृति में ऐसी सामर्थ्य या चेतनता कहाँ से आती?

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते।। –गीता अ. 9/10

इस प्रकार महत्–ब्रह्म रूप मूल प्रकृति सम्पूर्ण भूतों (पशु–पक्षी आदि योनियों में उत्पन्न) की योनि है अर्थात् गर्भाधान का स्थान है और परमपुरुष या परमात्मा अथवा ईश्वर उस योनि गर्भस्थल में चेतन समुदाय रूप गर्भ को स्थापित करने वाला है अर्थात् सम्पूर्ण योनियों में उत्पन्न होने वाली, मूर्तियों की योनि या उत्पत्ति स्थान महद्ब्रह्म मूल प्रकृति है और ईश्वर बीज रखने वाला है। अतः 'प्रकृति' इस जगत् की मातृस्वरूपा है तथा 'ईश्वर' पिता स्वरूप है–

"सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीज प्रदः पिता।।" –गीता अ. 14/4

इस प्रकार प्रकृति का स्थान ईश्वर से छोटा है। गीता की दृष्टि में यह जगत् मायारूप या काल्पनिक न होकर सर्वथा सत्य और वास्तविक है। गीता मुख्य प्रतिपाद्य विषय है–'नासतो विद्यते भावो नाभावो निद्यते सतः' अर्थात् असत् (वस्तु) की तो सत्ता नहीं है और सत् (वस्तु) का अभाव नहीं है, वस्तुतः यही सत्कार्यवाद है।

1.4 पुरुषोत्तमतत्व या वासुदेवतत्व– गीता में पुरुषोत्तमतत्व या वासुदेवतत्व ही 'परमतत्व' है। एक ही समय में अखण्ड और पूर्ण ब्रह्म होनेके कारण यह निर्गुण और सगुण दोनों ही है। उसे अपनी शक्ति तथा स्वरूप का सदैव ज्ञान रहता है। अपने भक्त को ज्ञान मार्ग तथा कर्तव्य का उपदेश देने के लिए वह सदैव तत्पर रहता है। वह अपने भक्तों से कुछ भी छिपाता नहीं है। वह अपने भक्तों का पिता, सखा या मित्र

और सब कुछ है। वह अपने भक्तों की रक्षा व कल्याण का समस्त भार वह अपने ऊपर ले लेता है, वस्तुतः वह भक्तों के साथ अनन्य भाव से रहता है–

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। –गीता अ. 9/22

पुरुषोत्तम तत्व को गीता का परम रहस्य और महत्वपूर्ण आध्यात्मिक तत्व माना गया है। सांख्य दर्शन में प्रकृति के ऐि 'अव्यक्त' शब्द का प्रयोग किया गया है परन्तु गीता–दर्शन के अनुसार 'अव्यक्त' तथा 'अक्षर' शब्दों का प्रयोग व्यक्ताव्यक्त से परे, प्रकृति–पुरुष से ऊपर एक विशिष्ट तत्व के लिए भी किया गया है। वह तत्व है अक्षरब्रह्म या परब्रह्म जिसकी प्रकृति (अव्यक्त) एक निकृष्ट विभूति है। गीता में प्रकृति को क्षर (नश्वर) कूटस्थ अविकारी पुरुष को अक्षर कहा गया है, परन्तु वह परमतत्व जो प्रकृति को अतिक्रमण करने वाला है तथा अक्षर से उत्तम है, उसे 'पुरुषोत्तम' कहा गया है–

"द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।। –गीता अ. 15/16

अर्थात् इस संसार में क्षर (नाशवान्) और अक्षर (अविनाशी) भी ये दो प्रकार के पुरुष हैं। इनमें सम्पूर्ण भूत प्राणियों के शरीर तो नाशवान् और कूटस्थ जीवात्मा अक्षर अविनाशी कहा जाता है।

अक्षर ब्रह्म तथा पुरुषोत्तम तत्व की भेदता जानना भी 'अत्यावश्यक' है। इस जड़ जगत् से भिन्न चेतन ब्रह्म को या अव्यक्त प्रकृति से भी परे विद्यमान रहने वाले सचेतन तत्व को 'अक्षर ब्रह्म' कहते हैं। परन्तु जो ईश्वर इस विश्व को व्याप्त करता हुआ भी इससे परे है, जगत् के समस्त पदार्थों में स्थित है तथा उनसे पृथक् भी है– वही ईश्वर 'पुरुषोत्तम' नाम से पुरुषोत्तमतत्व को सर्वकर्मसमर्पण कर देने की शिक्षा गीता देती है।

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'।
अहत्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि का शुचः।। –गीता अ. 18/66

1.5 पदार्थ विचार– गीता में परमलक्ष्य के स्वरूप का वर्णन तथा भौतिक जगत के विषयों का भी वर्णन किया गया है। गीता में तीन प्रकार के तत्वों का वर्णन है–क्षर (नाशवान्), अक्षर (अनश्वर) और पुरुषोत्तम।

(1) क्षर– इस संसार के सभी जड़–पदार्थ 'क्षर' हैं, इसे ही 'अपरा प्रकृति', 'अधिभूत', 'क्षेत्र' और 'अश्वत्थ' आदि नामों से बताया गया है।

'अश्वत्थमेनं सुविरूढ़मूलमसंगशस्त्रण दृढ़ेन छित्वा'। –गीता अ. 15/3

यह विकारों का, करणों का तथा भूतों का मूल कारण है। इनके अलावा कारणों से उत्पन्न राग–द्वेष, सुख–दुःख, परमाणुओं का संघात, चेतना तथा धृति–ये 'क्षर' हैं। इनमें से पृथ्वी, जल, अग्नि,

वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ भगवान की 'अपरा प्रकृति' के रूप हैं।

भूमिरापोऽनलो वायुः रवं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।। -गीता अ. 7/4
अपरेयमितस्त्वन्या प्रकृति विद्धि मे पराम्।
जीवभूता महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।। - गीता अ. 7/5

यह अपरा या भिन्न प्रकृति भगवान के साथ अनादिकाल से सम्बद्ध है। इससे बन्धन की प्राप्ति होती है। प्रलय के समय समस्त भूत इसी में लीन हो जाते हैं और इसी से पुनः सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होते हैं-

'सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।। -गीता अ. 9/7

इसी प्रकृति को अधिष्ठान मान कर भगवान सृष्टि, की रचना करते हैं। इसीलिए भगवान ने इस प्रकृति की **'ममयोनिर्महद्ब्रह्म'** और अपने को **'अहं बीजप्रदः पिता'** कहा है। यह प्रकृति भगवान की 'माया' से बिल्कुल पृथक् है। गीता में भगवान ने स्वयं कहा है कि अपनी 'प्रकृति' को अधिष्ठान मानकर अपनी 'माया' के साहचर्य से मैं संसार में अवतातिर होता हूँ-

"प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया।" -गीता अ. (4/6)

(2) **अक्षर-** गीता में अक्षर को जीव, पराप्रकृति, अध्यात्मा, पुरुष तथा क्षेत्रज्ञ भी कहा गया है और यही जगत् को धारण करता है। भूतों का कारण तथा मरने पर एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश करने वाली और इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोग करने वाली जीव की यह दूसरी प्रकृति है। केवल अविद्या के कारण यह तत्व जीव जन्म-मरण के बन्धन में पड़ता है।

(3) **पुरुषोत्तम-** इसकी चर्चा पूर्व में की जा चुकी है। पुरुषोत्तम को विभिन्न नामों से गीता में दर्शाया गया है, जैसे- परमात्मा, ईश्वर, वासुदेव, कृष्ण, प्रभु, साक्षी, महायोगेश्वर, ब्रह्म, अधियज्ञ, विष्णु, परमपुरुष, परम अक्षर, योगेश्वर आदि।

1.6 मोक्ष-अवस्था- मोक्ष अथवा मुक्ति सर्वोपरि आत्मा के साथ संयुक्त हो जाने का नाम है। इसके अन्य नाम भी हैं- मुक्ति, ब्राह्मी स्थिति, (ब्रह्म में स्थित हो जाना), नैष्कर्म्य या कर्म का त्याग, निस्त्रैगुण्य (जिसमें सत्व, रजस् और तमस् का अभाव हो) कैवल्य (एकान्त रूप मोक्ष), ब्रह्मभाव (ब्रह्म हो जाना)। मोक्ष एक अनुभव अथवा सत्य का दर्शन है। गीता दर्शन की यह विशेषता रही है कि इसमें हर स्थिति व हर स्तर के व्यक्ति के लिये मोक्ष की अवस्था तक पहुंचने का साधन बताया गया है। यही कारण है कि गीता में भिन्न-भिन्न मार्गों का अवलम्बन करने का संकेत मिलता है, जिसे जो अच्छा लगे वह उस मार्ग का अनुसरण करता हुआ चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर हो-येनेष्ठं तेन गम्यताम्। गीता में भगवान श्रीकृष्ण

स्वयं ईश्वर के प्रतिनिधि बनकर कहते हैं-"मुझे जानने का प्रयत्न करो, यदि तुम मेरा चिन्तन नहीं कर सकते तो योगाभ्यास करो, यदि तुम्हें यह अनुकूल नहीं पड़ता तो अपने सब कर्मों को मुझे अर्पित करके मेरी सेवा करने का प्रयत्न करो। यदि यह भी कठिन प्रतीत हो तो अपने कर्तव्य का पालन करो किन्तु फल की लालसा मत रखो और न फल की आकांक्षा ही करो"-

'अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोसि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय।। -गीता अ. 12/9
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि।। -गीता अ. 12/10
अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्व कर्मफत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।। -गीता अ. 12/11

गीता में किसी एक उपाय द्वारा अमरत्व या मोक्ष की प्राप्ति बताने की बजाय सभी उपायों को प्रधानता दी गई है, व्यक्ति को जो उपाय या साधन अभीष्ट हो, उसे अपनाये और अपना मार्ग प्रशस्त करें। "गीता में स्पष्ट शब्दों में लिखा है"- कई ध्यान के द्वारा तथा अन्य कई पूजा उपासना के द्वारा अमरत्व को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार सर्वोत्तम अनुभूत तथ्य मोक्ष है।

परम अवस्था में व्यक्तित्व का कोई आधार रहता है या नहीं, गीता का मत पूर्णरूपेण स्पष्ट विदित नहीं होता, तथापि व्यक्तित्व की अन्तिम या चरम अवस्था को सिद्धि अथवा पूर्णता, परासिद्धि, सर्वोत्तम पूर्णता, परागतिम्' पदम् अनामयम्' अर्थात् आनन्दमय स्थिति, शान्ति, 'शाश्वतं पदं अव्ययम्' अर्थात् नित्य एवं अविनश्वर स्थान भी कहा गया है।

मनुष्य के जीवन या चरम लक्ष्य-आत्मा का साक्षात्कार करना, परमपद को पाना आदि-आदि। इनकी प्राप्ति के लिये साधना करनी पड़ती है। जिन-जिन कार्यों के करने से मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अग्रसर होता है, वे कार्य ही अच्छे होते हैं उन्हें ही पुण्य-कर्म कहते हैं, उन्हें ही 'धार्मिक-कर्म' कहते हैं और जिन कार्यों के करने से मनुष्य अपने लक्ष्य से भटकता है, वे अनुचित कर्म पाप कर्म हैं तथा अधर्म के कार्य हैं। गीता के अनुसार जो लोग बहुत ही पवित्र कार्य करते हैं, जिन्हें ज्ञान की प्राप्ति हो गई है और जिनके ज्ञान के तेज से भस्म होकर भविष्य में फल देने में असमर्थ हैं, उन लोगों के मरने पर उनकी जीवात्मा देवयान मार्ग से सूर्य की किरण को पकड़कर ऊपर की ओर जाती है और वहाँ से लौटकर पुनः इस संसार में नहीं आती, ऐसे व्यक्ति या साधक के कर्मों का भोग समाप्त हो जाता है और मोक्ष अथवा मुक्ति की अवस्था प्राप्त हो जाती है, दूसरे शब्दों में इसे गीता में 'परागति' भी कहा गया है।

-(शेष अगले अंक में)

जीवन में यज्ञों का महत्व

लेखकः विश्वेन्द्रार्य, कमलानगर, आगरा (उ. प्र.)

आदर्श गृहस्थों के द्वारा ही आदर्श परिवारों का निर्माण किया जाता है। जिन परिवारों के अन्दर यज्ञीय भावना होती है वे ही आदर्श परिवार कहलाने के अधिकारी होते हैं। यज्ञीय भावना का आशय है–यज्ञ की भावना, और यज्ञ की भावना का मुख्य आशय है स्वार्थ का त्याग और परोपकार (परमार्थ) का ग्रहण। जहाँ पर ये भावना है वे परिवार निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर हुआ करते हैं। इस यज्ञीय भावना का विकास करने के लिए ही परमेश्वर ने सृष्टि के आदिकाल में मानव की उत्पत्ति के साथ ही या की भी उत्पत्ति की।[1] परमेश्वर की आज्ञा है–'प्रांचं यज्ञं प्रणतया सखायः' (ऋग्वेद 10/101/2) इस पावन प्रेरक यज्ञ को सभी जन मिलकर किया करें। बिना यज्ञ के उत्तम परिवारों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसलिए हमारे परिवार भी ऐसे हों जहाँ पर (यज्ञं दुहानम्) नित्य यज्ञ होते रहें। यज्ञों के द्वारा ही हमारे परिवार अत्यन्त मनोहर, धन–धान्य से परिपूर्ण, हितकारी और रमणीय बनते हैं।[2]

वैदिक संस्कृति के अनुसार यज्ञ हमारे परिवारों को सुख–समृद्धि, आयु, आरोग्यतादि प्रदान करने वाले हैं। ऋग्वेद के अनुसार–

उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्मानं च धेनवः।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः।। – ऋग्वेद 1/125/4

अर्थात् यज्ञ करने वाले और यज्ञ की इच्छा करने वाले को गायें व सुख–शान्ति इस प्रकार प्राप्त होते हैं, जिस प्रकार नदियाँ स्वयमेव समुद्र में जा गिरती हैं। इतनी ही नहीं अपितु उसे पालन करने की शक्ति, अन्न और यश, पुष्टि और तुष्टि जल की धाराओं के समान चारों ओर से प्राप्त होते हैं।

अथर्ववेद के अनुसार–यज्ञ इन्द्रमवर्धयत्। (20/27/5) यज्ञ से ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। यज्ञानुष्ठान से ही सद्गुण, सुविचार, उत्तम आचार और सत्यज्ञान की प्राप्ति होती है।

यज्ञं तपः (तै. आ. 10/8/1) यज्ञ एक का प्रकार का तप है। अतः प्रत्येक परिवार में यज्ञों का अनुष्ठान अवश्य ही होना चाहिए।

यज्ञ शब्द अत्यन्त व्यापक अर्थों वाला है। संक्षेप में यदि कहना हो तो कह सकते हैं कि लोकोपकार के लिए किये जाने वाले सभी शुभ कार्य यज्ञ हैं। सकाम, निष्काम, नित्य, नैमित्तिक सभी कर्म यदि मन और हृदय को पवित्र करते हैं तो वे सार्थक हैं और यज्ञ हैं।

यज्ञ शब्द 'यज्' धातु से बना है जिसका अर्थ वैयाकरणों और नेरुक्त आचार्यों के अनुसार देव

पूजा, संगतिकरण और दान है।

देवपूजा– जिन कार्यों में देवों की पूजा अर्थात् जो विद्या, ज्ञान और धर्म के सेवन से वृद्ध, दिव्य गुणों से युक्त, महान तेजस्वी, अपने ज्ञान–विज्ञान के द्वारा संसार का उपकार करने वाले महान विद्वान्, इस लोक और परलोक के सुख के लिए सर्वत्र विद्या, ज्ञान और धर्म का सदा उपदेश करने वाले हैं उनका मान–सम्मान, सेवा–सत्कार आदि करना तथा अग्नि, वायु, जल आदि प्राकृतिक तत्वों का यथायोग्य गुण संवर्धन करना।

संगतिकरण– अर्थात् विद्वानों, महात्मा पुरुषों का संग, परब्रह्म के साथ आत्मा का संयोग वा प्राप्ति तथा अग्नि, वायु, जल आदि प्राकृतिक तत्वों के साथ यथायोग्य संगति–जिससे अनेकविध शिल्प –कार्यों की सिद्धि होती है।

दान–संसार के प्राणियों के लाभ वा उत्कर्ष के लिए शुभ, गुण, विद्या, सुख, सत्यधर्म और धन आदि का नित्य दान करना तथा जल, वायु आदि प्राकृतिक तत्वों की शुद्धि वा गुण संवर्धन के लिए अग्निहोत्र में घृतादि उत्तमोत्तम पदार्थों का प्रक्षेप किया जाना।

जिन कर्मों में विश्वकल्याणार्थ उक्त देव पूजा, संगतिकरण और दान किया जाता है वे सब यज्ञ शब्द से ग्रहण किये जाते हैं। ऋषिवर दयानन्द सरस्वती ने भी यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के द्वितीय मन्त्र के भाष्य में भी 'यज्ञ' शब्द का यही तात्पर्य लिखा है।[3]

वैदिक संस्कृति में यज्ञों का संसार अत्यन्त विस्तृत है जिसे महर्षि प्रवर देव दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में सर्वत्र 'अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त' शब्दावली से सूचित किया है। इन अश्वमेधादि यज्ञों के इस विस्तृत वितान को यदि उप–संहृत करना हो तो पंचमहायज्ञों के रूप में उपसंहृत कर सकते हैं। प्राचीन ऋषि महर्षियों ने इन पंचमहायज्ञों के महत्व को अश्वमेधादिक यज्ञों से भी बढ़कर बताया है और इन्हें 'महायज्ञ' के नाम से गौरवान्वित किया है समय और द्रव्य की दृष्टि से अश्वमेधादि यज्ञ चाहे कितने ही विशाल या बड़े क्यों न हों, लेकिन महत्व की दृष्टि पंचमहायज्ञ इनसे बढ़कर ही हैं। गृहस्थ स्त्री–पुरुष अश्वमेधादि यज्ञों को करे अथवा न करे किन्तु पंचमहायज्ञों का करना अत्यन्त अनिवार्य कर्म है।

कुछ लोगों की मान्यता है कि हम तो अनेक प्रकार के दान–पुण्य–परोपकार, दीन–दुखियों की सेवा, गौ–सेवा आदि कार्य करते रहते हैं, यही हमारे यज्ञ और महायज्ञ हैं। तो निवेदन है कि ये सभी परोपकार के कर्म यज्ञ तो हैं लेकिन ये पंचमहायज्ञों का स्थान कदापि नहीं ले सकते और न ही पंचमहायज्ञों के न करने से होने वाली हानि और पाप की पूर्ति कर सकते हैं। जैसे किसी को बुखार आया है, वह सोचे मेरे पास खांसी की दवा है उसे खाने से प्यास बुझ जायेगी, तो ये असम्भव है। जिस प्रकार बुखार के लिए बुखार की दवा, प्यास के लिए पानी की आवश्यकता है, उसी प्रकार सेवा के स्थान पर

सेवा, दान के स्थान पर दान और पंचमहायज्ञों के स्थान पर पंचमहायज्ञ आवश्यक हैं। इसीलिए महर्षि मनु 'पंचैतांस्तु महायज्ञान् यथाशक्ति न हापयेत्' (4/16) का उद्घोष करते हुए किसी भी गृहस्थ को इन पंचमहायज्ञों के करने में प्रमाद न करने की आज्ञा प्रदान करते हैं।

ये पंचमहायज्ञ भौतिक तथा पारमार्थिक दोनों मार्गों के सेतु और सुख के आधार हैं अतः प्रत्येक मानव इन पंचमहायज्ञों को करते हुए परमेश्वर की कृपा, आनन्द और समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। 'महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः' –(मनु. 2/28) इन पंचमहायज्ञों तथा सोमयागों का अनुष्ठान करने वाला मनुष्य ब्रह्म प्राप्ति के योग्य हो जाता है।

ये पंचमहायज्ञ हमारी समस्त उन्नतियों के प्रतीक हैं।

ब्रह्मयज्ञ– हमारी आत्मिक उन्नति, देवयज्ञ–पारिवारिक व सामुदायिक उन्नति, पितृयज्ञ–सामाजिक उन्नति, अतिथियज्ञ–राष्ट्रिय उन्नति तथा बलिवैश्वदेव यज्ञ– सम्पूर्ण विश्व की उन्नति का प्रतीक है। इस प्रकार ये पांचों महायज्ञ हमारी सभी प्रकार की उन्नतियों का प्रतीक और कल्याण के साधन हैं। यही कारण है कि वैदिक धर्मियों के यहाँ इन यज्ञों का प्रचलन चिरकाल से है और ये उनकी दिनचर्या के अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग बने हुए हैं।

पाद टिप्पणी–

1– सहयज्ञाः प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। –गीता 30/10

2– होतृषदनं हरितं हिरण्यम्। –अथर्व. 7/9/9/1

3– धात्वर्थाद् यज्ञस्त्रिधाभवति– (1) विद्याज्ञान धर्मानुष्ठानंवृद्धानां विदुषाम् ऐहिक पारमार्थिक सुखसम्पादनाय सत्करणम् (2) सम्यक् पदार्थगुणसंमेलविरोधज्ञानसंगत्या शिल्पविद्याप्रत्यक्षीकरणम्, नित्यं विद्वत्समागमानुष्ठानम् (3) विद्या सुख धर्मादि शुभ गुणानां नित्यं दानकरणमिति। –यजुर्वेद भाष्य अ. 1, मं. 2 (महर्षि दयानन्द सरस्वती)

(आदर्श परिवारों के आदर्श कर्त्तव्य कर्म से)

पृष्ठ संख्या 8 का शेष–

चाय–नाश्ते के बाद बोले, आओ तुम्हें अपना बंगला दिखा दूं। दिखाते रहे–यह बैडरूम है, यह दूसरा बैडरूम, यह गैस्टरूम है, यह डाइंग–डायनिंग, यह किचन और यह स्टोर। स्टोर के पास से गुजर रहे थे कि अन्दर से किसी के घुट–घुट के रोने की आवाज सुनाई दी। मैंने रमणीक भाई से पूछा कि अन्दर कौन रो रहा है। बोले–"कोई नहीं भाई, अन्दर कौन होगा, अन्दर तो केवल बेकार का सामान भरा हुआ है, फिर मुझे तो कोई आवाज सुनाई नहीं दे रही।" इसी बीच मैं अन्दर झांक चुका था, मैंने आवाज दी–"कौन रो रहा है अन्दर?" एक कोने से जबाब आया–"मैं तुम्हारे दोस्त की नैतिकता हूँ, सालों से इस कोने में पड़ी आँसू बहा रही हूँ।"

"महर्षि देव दयानन्द में मानवता कूट-कूट कर भरी थी"

लेखकः खुशहाल चन्द्र आर्य, कोलकाता

मानवता एक वह गुण है जिसमें सब गुण समाहित हो जाते हैं यानि मानवता गुण के अन्दर सब गुण समाहित हो जाते हैं, जैसे दयाा, करुणा, परोपकारिता, सहृदयता, सेवा, निष्छलता, न्यायप्रियता, निर्भयता, निष्सृक्षता, निष्कपटता के साथ ही लोभ, लालच, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, मोह, अहंकार आदि से दूर रहना आदि समस्त गुण मानवता में समाहित हो जाते हैं। महर्षिजी के जीवन की कुछ घटनाओं का यहाँ संक्षिप्त वर्णन करके मानवता को दशनि का यहाँ प्रयत्न किया है जो इसी भांति है।

1– **दयालु महर्षि दयानन्द–** महर्षि जी सहृदयी और दयालु थे। वे किसी को कष्ट पहुंचाने की इच्छा ही नहीं रखते थे। प्रवचन के मध्य एक मद्यप ब्राह्मण ने उनके ऊपर जूता फेंक मारा, श्रद्धालु भक्त उखड़ गये। उन्होंने उसे पकड़ कर खूब पिटाई की। महर्षि जी ने स्वयं उसे छुड़वाया और बोले–"इसने अज्ञानवश ऐसा कर दिया, इसलिए यह दया का पात्र है" इस पर उसे छोड़ दिया गया। यह घटना फर्रुखाबाद की है।

2– **स्नेहशील व उदारचेता महर्षि दयानन्द–** कानपुर में गंगापुत्रों की काफी संख्या थी। गंगामन्दिर मे जो ब्राह्मण पूजा पाठ करते थे, उन्हें गंगापुत्र कहकर सम्बोधित किये जाने की प्रवृत्ति वहां के निवासियों में थी। एक गंगापुत्र महर्षि के निवास से कुछ दूरी पर रहता था। उसका मार्ग महर्षि जी के कुटिया के सामने से होकर जाता था। उसकी नित्य क्रियाओं में से एक क्रिया यह भी थी कि जब भी वह महर्षि जी के निवास के सामने से आता-जाता तो महर्षि जी के सम्बन्ध में अपशब्दों का प्रयोग करता। महर्षि जी को इस बात की जानकारी थी, परन्तु उन्होंने कभी आक्रोश प्रकट नहीं किया। महर्षि जी के पास श्रद्धालु जब नित्य ही फल और मिष्ठान्नादि लेकर आते। महर्षि जी उन्हें वहां उपस्थित सज्जनों को वितरित कर देते। एक दिन मिष्ठान्नादि सामग्री बांटने के पश्चात् बची रह गई। उसी समय गंगापुत्र गालियां देता हुआ वहाँ से जा रहा था। महर्षि जी ने उसे बुलवाया और आदरभाव से अपने समीप आसन पर बिठाया। इसके बाद अति प्रेम से लड्डू व अन्य मिठान्न महर्षि जी ने उसे समर्पित किये और स्नेह से बोले–"इसी समय आप नित्य आया कीजिए। भक्त लोग बहुत सी खाद्य सामग्री लाते हैं। आप भी उसमें से प्रसादस्वरूप ग्रहण किया करें।

इसके पश्चात् नित्य ही सन्ध्या समय वह गंगापुत्र महर्षि जी के पास आने लगा और महर्षि जी से प्रसाद पाकर सन्तुष्ट होता रहा। उसके मन में कभी-कभी यह शंका उठ खड़ी होती थी कि अवश्य ही किसी दिन महर्षि जी मेरे द्वारा दी जा रही गालियों की चर्चा करेंगे परन्तु महर्षि जी ने ऐसा नहीं किया। कभी-कभी धर्म चर्चा उसके साथ अवश्य किया करते थे। महर्षि जी के ऐसे स्नेह समन्वित व्यवहार से उसे अपने किये पर पश्चात्ताप होने लगा और एक दिन ऐसा हुआ कि उसने महर्षि जी के चरण पकड़

अपनी त्रुटि की क्षमा कर देने की प्रार्थना उसने की।

महर्षि जी ने कहा वत्स! हम इस प्रकार की बातों पर ध्यान नहीं देते। तुम भी उन बातों का विस्मरण कर दो और आनन्द से रहो।" वह गंगा भक्त महर्षि जी का भक्त हो गया।

3– वीतराग व तपस्वी महर्षि दयानन्द– महर्षि दयानन्द का जीवन त्याग और तप का पर्याय था। उन्हें संसार का कोई भी ऐषणा अपनी ओर आकर्षित कर पाने में असमर्थ थी। यद्यपि इस समय कानपुर में बहुत से समृद्धजन उनके भक्तों में सम्मिलित हो गये थे और महर्षिजी के लिए हर सुख–सुविधा जुटाने हेतु तत्पर रहते थे, परन्तु महर्षि जी इन सब सुविधाओं से स्वयं को उदासीन रखते थे। कानपुर के भैरवघाट पर महर्षि जी बिना किसी बिछौने के भूमि पर लेटकर ही रात्रि व्यतीत करते थे। वैसे तो वे कम समय ही निद्रा की गोद में विश्राम पाते थे, क्योंकि उनका अधिकतर समय साधना की मस्ती में ही व्यतीत होता था। सोने के समय सिरहाने के लिए वे दो ईंट रख लेते थे। सदयनारायण जी उनके परम भक्त हो गये थे। उन्होंने महर्षि जी से विनय कर पानी पीने के लिए एक लोटा और बांधने के लिए एक कोपीन उन्हें दे दी थी।

वे उनसे समय–समय पर वहाँ रहने का आग्रह भी करते रहते थे। परन्तु उस दिन आश्चर्य जनित उदासी उनके चेहरे पर उतर आई जिस दिन महर्षि के स्थान पर उनकी नई कोपीन और लोटा रखा मिला क्योंकि महर्षि जी उस भक्त को बिना बतलाए वहाँ से अन्यत्र प्रस्थान कर गये। पत्र व्यवहार के लिए भी अगला पता किसी के पास नहीं था।

4– यही मोक्ष का मार्ग है– गंगा के किनारे एक वयोवृद्ध सन्त रहते थे। वे महर्षिजी से बड़ा स्नेह करते थे। महर्षि जी भी नित्य ही आदरभाव से उनसे भेंट करते। एक दिन उस वृद्ध सन्त ने महर्षि जी से कहा बच्चा! यदि तुम निवृत्ति मार्ग को ग्रहण कर लेते तो इसी जन्म में तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति हो जाती। व्यर्थ ही परोपकार के चक्कर में फंस गये। अब तुम्हें मोक्ष के लिए एक जन्म और लेना होगा।

महर्षि जी ने उत्तर दिया–"महाराज, मुझे भी मोक्ष की आवश्यकता है, फिर भी देश के अनेक दुःखी दरिद्र लोग जो अज्ञान के अंधेरे में भटकते हुए कष्ट पूर्ण जीवन भोग रहे हैं। मेरा उद्देश्य पहले इन्हें दुःख–दारिद्रय से मुक्ति दिलाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुझे कई जन्म भी लेने पड़े तो मैं जन्म लेने से नहीं बचना चाहूँगा। मेरे लिए यही मोक्ष का मार्ग है।

5– सत्य के मार्ग से मुझे कोई भी नहीं हटा सकता– जेठालाल जी वकील पौराणिक वातावरण में पले थे, परन्तु दुराग्रही नहीं थे। वे महर्षि जी के सत्संग में नित्य प्रति आते थे। वे जहाँ अवसर पाते महर्षि की की भूरि–भूरि प्रशंसा करते। वे एक दिन महर्षि जी को बोले–"महाराज! आपके प्रवचन इतने मनोहारी होते हैं कि श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। विरोधी भी आपकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। आप अपने वक्तव्यों के विषय में थोड़ा सा परिवर्तन कर लें तो लोग आपको शंकर का अवतार मानने लग जायेंगे।"

महर्षि जी हंस पड़े। उन्होंने वकील साहब से पूछा–"क्या परिवर्तन कर लें जेठालाल जी? जेठालाल जी ने कहा–"आप मूर्ति पूजा का खण्डन न किया करें उसका शास्त्रोक्त विधि से मण्डन आरम्भ कर दें। महर्षि आपके लिए कठिन भी नहीं है।

महर्षि जी गम्भीर हो गये। बोले–"मेरे लिए असत्य भाषण सम्भव नहीं है। यदि मैं ऐसा कर पाता तो काशी नरेश मुझे विश्वनाथ मन्दिर का पद देने के लिये सहर्ष उद्यत थे। वकील साहब! संसार का कोई भी आकर्षण मुझे सत्य के मार्ग से विचलित करने में असमर्थ है।

6– अज्ञान के अन्धकार से निकलना मेरा धर्म है– महर्षि जी अपने प्रवचन के पश्चात् किसी भी सज्जन से कोई भेंट स्वीकार नहीं करते थे। वे विनम्रता पूर्वक श्रद्धालु भक्त को समझा देते। प्रवचन के पश्चात् वक्ता को भेंट चढ़ाना आर्ष रीति के अनुकूल नहीं है। मैं अपनी पोथियों के पाठ नहीं बेचता हूँ। अज्ञान के अंधकार से समाज को निकालना मेरा धर्म है। ❁

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन–जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठको से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/– एक सौ पचास रुपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/– एक हजार पाँच सौ रुपये भेजकर पत्रिका पढ़ने का लाभ उठायें।

हम आपको प्रति माह पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार–प्रसार जन–जन तक भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

–धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या–

इण्डियन ओवरसीज बैंक

शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा

I F S C Code- IOBA 0001441

'सत्य प्रकाशन' खाता संख्या– 144101000002341

दान हेतु– श्री विरजानन्द ट्रस्ट' खाता संख्या– 144101000000351

सृजनवृत्ति अपनाइए–धरा स्वर्ग बन जाएगी

लेखकः यशपाल आर्यबन्धु, मुरादाबाद (उ. प्र.)

मनुष्यमात्र में दो प्रकार की वृत्तियां पाई जाती हैं। एक वे हैं जिनके बढ़ाने से सुख की प्राप्ति होती है और दूसरी वे हैं जिनके घटाने से सुख की प्राप्ति होती है। जो वृत्तियाँ सकारात्मक उत्प्रेरकों से परिचालित होती हैं, उनसे समाज को सुख की प्राप्ति होती है। ऐसी वृत्तियों को सृजनकारी वृत्तियां कहते हैं और जो वृत्तियां नकारात्मक उत्प्रेरकों से परिचालित होती हैं, उनसे समाज में कलह, क्लेष, वैमनस्य, और विद्वेष उत्पन्न होता है। इसलिए इन्हें विनाशकारी अथवा विध्वंसक वृत्तियां कहते हैं। समाज में सुखसमृद्धि, सहयोग, स्नेह एवं सहानुभूति हो इसके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्यमात्र सुखद सृजनकारी वृत्तियों को अपनावे और दुःखदायिनी विध्वंसक वृत्तियों को सर्वथा त्याग दे।

मनुष्य के लिए उसकी सृजनात्मक शक्ति विधाता की सम्भवतः सर्वोत्तम देन है, परन्तु भौतिकता-प्रधान आज के इस वैज्ञानिक युग में सभ्य, समुन्नत एवं सुपठित कहा जाने वाला मानव विधाता की इस अनुपम देन को सर्वथा भुला चुका है और विध्वंसात्मक कार्यों में अहिर्निश जुटा हुआ है। परिणामस्वरूप मानवता कराह उठी है और धरा का प्रत्येक मानव इस स्थिति से उबरना चाहता है। पर बिना सृजनवृत्ति अपनाये वह कभी भी इससे उबर नहीं सकता। इसीलिये हमारा नारा है। सृजनवृत्ति अपनाइये–धरा स्वर्ग बन जाएगी।

चिन्तन बदलिए– सृजनवृत्ति अपनाने के लिये हमें अपनी चिन्तनधारा बदलनी होगी क्योंकि सृजनात्मकता का आधार ही चिन्तन है। हमें अपनी नकारात्मक सोच को त्याग कर सकारात्मक सृजनकारी चिन्तन को अपनाना होगा। स्मरण रहे कि–**विचारों में परिवर्तन आने से ही व्यवहार में भी परिवर्तन आया करता है। यदि विचार नहीं बदले तो व्यवहार भी नहीं बदलता।** हमारे व्यवहार में बदलाव आए इसके लिये आवश्यक है कि प्रथम हमारे विचारों में बदलाव आये। विचारों में बदलाव लाने के लिये हमें सृजनवृत्ति को अपनाना ही पड़ेगा। इसके बिना विचारों में बदलाव नहीं आ सकता। हम यह क्यों भूल जाते हैं कि **सद्विचार जब आचार में ढलता है, तभी सदाचार बनता है।**

साहित्य में सृजनवृत्ति अपनाइये– साहित्य विचारों में परिवर्तन लाने का एक उत्कृष्ट एवं प्रभावशाली साधन है। अतः विचारों में परिवर्तन लाने के लिए उत्तम साहित्य के सृजन की आवश्यकता असंदिग्ध है। उत्तम साहित्य के लिये सृजनात्मक लेखन की महति आवश्यकता है। यह भी ध्यान रहे कि उलूल-जलूल कुछ लिखकर पन्ना काले करने मात्र को साहित्य सृजन नहीं कहते। साहित्य तभी साहित्य है कि जो

हित-सहित हो। जिसमें समाज का कुछ भी हित न हो अथवा जो समाज को कुछ भी दिशा-निर्देश न दे, वह साहित्य नहीं। अतः सामाजिक बदलाव लाने के लिए साहित्य में सृजनकारीवृत्ति अपनाने की बहुत आवश्यकता है। सृजनकारी साहित्य ही हमारे चिन्तन में बदलाव लाने में समर्थ हो सकता है। आज साहित्य के नाम पर जो सैक्स, जासूसी, एवं भूत-प्रेत आदि के सम्बन्धित समाज को पथभ्रष्ट करने वाली पुस्तकें छप रही हैं, उन पर रोक लगानी चाहिए। साथ ही कला के नाम पर जो अश्लील चित्र, मूर्तियाँ, सिनेमा, टी. वी. आदि के कार्यक्रम दिखाये जा रहे हैं, उनमें भी यथेष्ट परिवर्तन होना चाहिए। तभी सृजन सम्भव है।

संतति निर्माण में सृजनवृत्ति अपनाइये– मानव में सृजनवृत्ति विकसित करने का सर्वोत्तम उपाय है संस्कारवान् उत्तम सन्तान का सृजन करना। संतान तो पशु-पक्षी भी उत्पन्न कर लेते हैं। यदि मनुष्य भी वैसा ही करता है तो वह मात्र उत्पत्ति होगी सृजन नहीं। सृजन तो संस्कारवान् सन्तान से ही सम्भव है। **संस्कारों से ही संतान में उत्कृष्टता आती है।** सृजनकारी महामानव महर्षि दयानन्द की ऐसी ही मान्यता है। वे लिखते हैं-"जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या है, वैसे सन्तान को उत्कृष्ट करने की यही विद्या है।" (गर्भाधान संस्कार, संस्कार विधि) यह संस्कार क्या है-कहना होगा कि **मानवता सम्बन्धी सर्वोच्च गुणों को धारण करने के लिए हृदय में जिन सत्प्रेरणाओं, सद्भावनाओं, तथा सत्संकल्पों की आवश्यकता पड़ती है, उन्हीं को मानव-मन में वपन करने का नाम संस्कार है।** महर्षि दयानन्द के ही शब्दों में-"संस्कार उसको कहते हैं जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवे।" (आर्योद्देश्य रत्नमाला) प्राचीन ऋषियों ने इसी उद्देश्य से 16 संस्कारों का विधान मानव-मात्र के लिए किया था। इससे यह भी पता चलता है कि मानव जीवन की कोई भी अवस्था संस्कार-शून्य नहीं है। गर्भ से ही मानव संस्कारों में पलता है, शैशव से यौवन तक इन्हीं में पनपता रहता है। फिर भी संस्कारों के सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि मानव-जीवन की प्रारम्भिक अवस्था ही सृजन की वास्तविक अवस्था है। मानव मस्तिष्क की वास्तविक शिक्षा शैशवकाल से ही प्रारम्भ हो जाती है और वह अमिट भी होती है। बाईबिल में आया है कि बालक को जिस पथ पर चलने की आप शिक्षा देंगे, बड़ा होने पर वह उस मार्ग से हटेगा नहीं। "Train up a child in the way he should go and when he is old, he will not depart from it."

शिक्षा में सृजनवृत्ति अपनाइये– सृजन विकास-प्रक्रिया का प्रथम लक्षण है। प्रत्येक सृजनात्मक कार्य विकास-प्रक्रिया की गति देता है। यह प्रतिभा का पाथेय है। समाज की सर्वप्रमुख आवश्यकता है। विद्यालयों पर इस आवश्यकता की पूर्ति का सर्वाधिक दायित्व है। अतः विद्यालयों को अपनी शिक्षा-पद्धति कुछ इस प्रकार की बनानी चाहिए जिससे इस प्रतिभा का समुचित विकास एवं उद्घाटन हो सके। इसके

लिए सर्वप्रथम शिक्षकों एवं अध्यापकों को सृजन का महत्व बताना होगा और उन्हें सृजनात्मक शिक्षण(Creative Teaching) का विशेष प्रशिक्षण देना होगा। तभी सृजन सम्भव है। वर्तमान रटन्त विद्या के स्थान पर चाहे तो खेल द्वारा शिक्षण या कार्य द्वारा शिक्षण पद्धति को अपनाना होगा। रचनात्मक विधि से जहां बालक जल्दी सीखते हैं, वहां उनमें सृजनवृत्ति का भी विकास होता है। रचनात्मक कार्यों में बालकों की स्वाभाविक रुचि होती है। इसी रुचि को देखते हुए किसी विद्वान् ने बच्चे के मुख से क्या सुन्दर बात कहलवाई है–

If you tell me, I shall forget.

If you show me, I shall understand.

If you involve me, I shall learn & remember.

अर्थात् यदि तुम मुझे बताओगे तो मैं भूल जाऊंगा, यदि तुम मुझे दिखाओगे तो मैं समझ जाऊंगा और यदि तुम मुझे उस कार्य में लगा दोगे तो मैं उसे सीख लूंगा और याद रखूंगा। यही शिक्षा में सृजन प्रक्रिया है। अतः इस प्रक्रिया को यथाशीघ्र अपनाना अत्यन्त आवश्यक है। ताकि बालकों में सृजन–क्षमता का समुचित विकास हो सके और उस क्षमता का विभिन्न क्षेत्रों में क्रियात्मक उपयोग भी हो सके। इसके लिए बचपन से ही बच्चों को सृजन का महत्व समझाना होगा ताकि वे आजीवन उसे भूलें नहीं।

विज्ञान में सृजनवृत्ति की आवश्यकता– सृजन में विज्ञान की अत्यन्त महत्वपूर्ण गौरवशाली भूमिका रही है। विज्ञान ने जितने भी लोकोपकारी आविष्कार किये हैं उनके पीछे उसकी यही सृजन की वृत्ति ही कार्यरत रही है। किन्तु दुर्भाग्य से विज्ञान अब अपनी सृजनात्मक वृत्ति खोता जा रहा है और उसके स्थान पर विध्वंसक वृत्ति को अधिक महत्व दे रहा है। आज का विज्ञान अत्यन्त मारक और संहारक आयुधों के निर्माण में जुटा है और ऐसे विनाशकारी अस्त्र–शस्त्र बना–बना कर सत्ता के मद में चूर निरंकुश शासकों के हाथ में थमाता चला जा रहा है। डर है कि किसी दिन किसी राजनीतिक उन्माद में ग्रस्त किसी शासक की मति फिर गई और उसने उन मारक और संहारक अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग कर डाला तो फिर संसार को विनाश से कोई भी बचा नहीं पायेगा। इसलिए विज्ञान के द्वारा सृजनवृत्ति का अपनाया जाना अत्यन्त आवश्यक एवं अनिवार्य है। यदि विज्ञान सृजनवृत्ति अपनाता है तो निश्चय ही वह वरदान सिद्ध होगा अन्यथा वह अभिशाप बनकर रह जायेगा। फिर तो यही कहना होगा कि–

जो मंगल उपकरण कहाते, वे मनुजों के पाप हुए क्यों?
विस्मय है विज्ञान विचारे, कि वर ही अभिशाप हुए क्यों?

धर्म में सृजनवृत्ति की आवश्यकता– धर्म समाज के लिए एक अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक अभिकरण

है। किन्तु यह तभी तक उपयोगी है जब तक इसमें सृजनधर्मिता है। सृजनधर्मिता के अभाव में तो इसे धर्म की संज्ञा देना भी उचित नहीं होगा। धर्म में सृजनवृत्ति रहने से वह शान्ति का कारण बनता है और उसके अभाव में अशान्ति का कारण। धर्म में विकृति आने से वह सम्प्रदाय का रूप ले बैठता है और सम्प्रदाय समाज में विघटन का कारण बनता है। धर्म जोड़ता है जबकि सम्प्रदाय तोड़ता है। यदि कोई तथाकथित धर्म तोड़ने लगे तो समझ लीजिए कि उसमें सृजनधर्मिता नहीं रही। सत्य तो यह है कि कतिपय रूढ़ियों को निभा देना मात्र धर्म नहीं। प्रगतिशीलता धर्म का प्रमुख लक्षण है। धर्म मानव में उदारता, क्षमा, सहष्णुता, अहिंसा, अस्तेय आदि उत्तम-उत्तम सद्गुणों का विकास करता है। यदि धर्म के अपनाने पर भी मानव में इन गुणों का समुचित विकास नहीं हो रहा तो वह असृजनशील होने से सर्वथा त्याज्य है। आज जो तथाकथित धार्मिक उन्माद अपने देश एवं अन्यत्र भी देखने को मिल रहे हैं वे इसी असृजनशीलता के ही कारण हैं। अतः धर्म में सृजनवृत्ति अपनाई जानी अत्यन्त आवश्यक है। यदि हमने धर्म में सृजनवृत्ति अपना ली तो धर्म संसार के लिए एक वरदान सिद्ध होगा और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का जन-जन में संचार हो जायेगा और यह धरा स्वर्गसमान सुखदायिनी बन जायेगी।

अन्त में हम यही कहेंगे कि हमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सृजनवृत्ति को अपनाना चाहिये ताकि हमारा जीवन सुरभित और सुगंधित हो उठे और दूसरों के किसी काम आ सके। उपजाऊ भूमि को ही लोग चाहते हैं, ऊसर भूमि को कोई नहीं चाहता। हमारा जीवन भी ऊसर भूमि की तरह न हो, उपजाऊ भूमि की तरह हो, इसके लिए मनुष्यमात्र में सृजनवृत्ति का होना स्वयंसिद्ध है। और फिर वह भूमि उपजाऊ भी ऐसी हो जिसमें उपवन की शोभा बढ़ाने वाले सौन्दर्य, सुगंध और फल-फूल वाले लता-गुल्म तो हों निरर्थक झाड़-झंकाड़ और खरपतवार आदि न हों। जिनमें सौन्दर्य, सुगंध तथा आकर्षण नहीं और जो फल-फूल आदि से उपवन को उपकृत नहीं करते, लोग उन्हें झाड़-झंकाड़ तथा खरपतवार आदि समझ कर उखाड़ फेंकते हैं। संसार-वाटिका में हम भी यदि कोई सुगंध, सौन्दर्य, आकर्षण तथा फल-फूल आदि उत्पन्न नहीं कर सके तो हम भी खर-पतवार ही की तरह किसी काम के नहीं और तब यदि कोई हमें भी निरर्थक एवं अनुपयोगी समझ कर उखाड़ फेंके तो आश्चर्य ही क्या? अतः आइये! अपनी सृजनवृत्ति से हम विश्व-उपवन को सुगंध, सौन्दर्य, आकर्षण तथा फल-फूल आदि से भर दें। तभी हमारा जीवन सार्थक है और हम मानव कहलाये जाने के अधिकारी हैं। ❁

स्वर्ग नहीं है कहीं ग्राम नगर या वन में।
स्वर्ग बनेगा वहीं सृजन का भव्य भाव हो मन में।
सृजनहीनता ही नर भीतर नीच भाव भरती है।
यही भावना मानवता का सर्वनाश करती है।

-आचार्य स्वदेश

नैतिकता और छात्र

लेखक: डॉ0 रमाकान्त दीक्षित, भिवानी (हरि0)

नैतिकता किसे कहते हैं? पहले यह समझ लेना नितान्त आवश्यक है। 'नीति' धर्म पर आधारित मानी गई है। आचरण-संहिता, सिद्धान्त, नियम, विधि-शास्त्र आदि ऐसा धरातल प्रदान करते हैं, जिस पर नैतिकता का भवन स्थित है। उचित और अनुचित, स्वकल्याण और अकल्याण, धर्म और अधर्म, 'कर' और 'अकर' आदि का ज्ञान हमें नीतिशास्त्र ही कराता है। इसका प्रमुख मानदण्ड ईमानदारी और औचित्य है। वस्तुतः नैतिकता में वाक्शुचिता के साथ-साथ आचरण-शुद्धि एवं सत्य पर आधारित व्यवहार की बात विशेष महत्वपूर्ण है।

मुझे यह बात आज भी याद है, जब मैं विद्यार्थी था और आचार्य विद्यानन्द विदेह ने उस समय राजा रणजीतसिंह मेमोरियल हायर सैकेण्डरी स्कूल, भोलारामपुर, धामपुर (बिजनौर उ0 प्र0) में अपना मधुर प्रवचन देते समय अंग्रेजी के 'WATCH' शब्द की 'नैतिकता' विषय को लेकर अत्यन्त सुन्दर और हृदयग्राही व्याख्या की थी। उन्होंने जो कुछ कहा था, उसका सार इस प्रकार है-

W= Watch your 'words'.

अर्थात्-अपने शब्दों को बोलने से पहले, उनका निरीक्षण करो। (पहले तोलो फिर बोलो)

A= Watch your 'actions'.

अर्थात् अपने कामों को करने से पहले, उनका निरीक्षण करो।

T= Watch your 'thoughts'.

अर्थात्- अपने विचारों को प्रकट करने से पहले उनका निरीक्षण करो।

C= Watch your 'character'.

अर्थात्- अपने चरित्र को उत्तमोत्तम बनाने के लिए, उसका निरीक्षण करो।

H= Watch your 'health'.s

अर्थात्- अपने स्वास्थ्य को अच्छा रखने के लिये, उसका निरीक्षण करो।

इस एक 'WATCH' (निरीक्षण) शब्द में जैसे समूची नैतिकता समा गई है। वास्तव में इन्द्रियनिग्रह और आत्म-संयम का नाम ही चरित्र-आत्मोन्नति और नैतिकता है। नैतिक आदर्श मानवता के द्वार ही तो हैं।

नैतिकता हमें सिखाती है कि हम जातीय विद्वेष पारस्परिक घृणा, सन्देह आदि को समाप्त कर विश्वबन्धुत्व के आदर्श को क्रियात्मक रूप प्रदान करें। एच0 जी0 वैल्स के शब्दों में- One human society (एक मानव समाज) -का विकास करें?

पर, आज विद्यार्थी वर्ग अथवा बच्चों में नैतिक मूल्यों का किस सीमा तक ह्रास हुआ है–यह पिछले वर्षों के दौरान हुई तोड़–फोड़, छुरेबाजी आदि से स्पष्ट है। कविवर 'दिनकर' ने इस बात पर कटाक्ष करते हुए आज के विद्यार्थी की बीमार मानसिकता को उजागर करते हुए कहा है–

और छात्र बड़े पुरजोर हैं,
कालेजों में सीखने को आये तोड़–फोड़ हैं,
कहते हैं, पाप है समाज में,
धिक हम पै, जो कभी पढ़ें इस राज में,
अभी पढ़ने का क्या सवाल है?
अभी हमारा धर्म एक हड़ताल है।

आज बच्चों में इस प्रकार के नैतिक पतन के लिये किसी एक तत्व को नहीं, अपितु अनेक तत्वों को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

बच्चा सर्वप्रथम अपने परिवार में, अपने माता–पिता के संरक्षण में रहकर बहुत कुछ सीखता है। उसका अधिकांश समय परिवार के साथ ही व्यतीत होता है। माता को उसका पहला गुरु और पिता को उसका दूसरा गुरु माना गया है। अतः बच्चे के नैतिक–अनैतिक होने की जिम्मेदारी सर्वप्रथम परिवार की ही है।

हमें यहां यह देखना होगा कि क्या परिवार बच्चों को ऐसा वातावरण प्रदान कर रहे हैं, जिनमें संकीर्णता को कोई स्थान न हो बल्कि सबके प्रति सहानुभूति, प्रेम और उदारता की भावना हृदय में हो। यह सब शिक्षित परिवारों द्वारा ही सम्भव है।

परिवार के पश्चात् विद्यालय बच्चे का परिवार बन जाता है। यहां उसका सम्पर्क अध्यापक–पाठ्यक्रम और नये–नये साथियों से होता है।

इस प्रसंग में यह बात विशेष रूप से विचारणीय है कि शिक्षा–नीति में पहले अध्यापक, जो बच्चों के लिए मित्र, दार्शनिक और मार्ग–दर्शक हैं, अगर वह अपने इन गुणों को भुलाकर, आदर्शों को तिलांजलि देकर पतित हो जाए तो फिर बच्चों में नैतिकता को खोजना गूलर के फूल के समान ही होगा।

आज यदि शिक्षा–नीति पर भी ध्यान दें तो दुर्भाग्य से आज की शिक्षा–प्रणाली भी पुस्तकीय, लड़खड़ाती हुई और अपूर्ण है। आज का विद्यार्थीवर्ग जीवन से निराश है; वह कुंठा और संत्रास का जीवन जीता हुआ, भौतिक सुख को ही सच्चा सुख मान बैठा है। उसके लिए, उसका परम लक्ष्य 'डिग्री' प्राप्त कर, कोई कुर्सी वाली नौकरी प्राप्त करना मात्र रह गया है। उसके पास भविष्य के लिए कोई योजना नहीं है। भावी जीवन की कोई रूपरेखा नहीं है। वह हर कहीं कमियां तो निकाल सकता है, पर अपने ठोस सुझाव नहीं दे सकता। वह पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंग कर अपनी सभ्यता और संस्कृति को दिन–प्रतिदिन भुलाता जा रहा है। आज हिप्पी बनने का चाव उसमें जोरों से जाग रहा है, जबकि हमारा

नैतिक आदर्श तो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में इस प्रकार रहा है-

वे आर्य ही थे जो कभी अपने लिये जीते न थे,
वे स्वार्थ-रत हो, मोह की मदिरा कभी पीते न थे।
संसार में उपकार-हित, जब जन्म लेते थे सभी,
निश्चेष्ट होकर किस तरह, वे बैठ सकते थे कभी।।

सन् 1964-66 की शिक्षा-आयोग की रिपोर्ट में कहा गया है कि आधुनिकता के मार्ग पर जाने की इच्छा रखने वाले पारस्परिक समाजों को पहले अपनी शिक्षा-व्यवस्था को बदलना चाहिए, क्योंकि शिक्षा का पारस्परिक ढांचा जितना अधिक व्यापक होता जाएगा, उसे बदलना उतना ही मुश्किल और महंगा होता जाएगा और आगे चल कर हुआ भी ऐसा ही। धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा की अवहेलना करने से विद्यार्थी-असन्तोष कम नहीं हुआ। वे अपने कर्त्तव्यों को भुलाकर अधिकारों को प्राप्त करने की दौड़-धूप में लगे हुए हैं।

अत: विद्यार्थियों को रोजगार और विज्ञान की शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक तथा नैतिक, शिक्षा का दिया जाना वर्तमान समय में अनिवार्य होना चाहिए। इससे उनमें दैवी गुण अपना चमत्कार दिखा सकेंगे। इस सम्बन्ध में चक्रवर्ती सी-राजगोपालाचार्य के कथन को भुलाया नहीं जा सकता-"शिक्षा का सबसे महत्वूपर्ण उद्देश्य छात्रों में दैवी गुणों तथा कर्त्तव्यपरायणता का विकास करना है। विज्ञान को संसार ने एक बार विजेता के रूप में प्रदर्शित किया था, परन्तु अब वही विज्ञान, धर्म का सबसे बड़ा सहयोगी है। उच्च विज्ञान भौतिकवाद के दृष्टिकोण को त्याग कर अब आत्मिक विकास तथा उपनिषदों की भांति देवत्व की ओर ले जाने वाला बन रहा है। किन्तु विज्ञान धार्मिक विश्वास और दैवीगुणों के विकास में तभी सहायता दे सकता है, जब व्यक्ति को बाल्यावस्था से ही इसके अनुकूल शिक्षित किया जाए।" इसीलिए आजकल हरियाणा शिक्षा-विभाग भी नैतिक शिक्षा को पाठ्य-क्रम का एक अनिवार्य विषय बनाये जाने पर गम्भीरता से विचार कर रहा है।

यह हर्ष का विषय है कि भारत में भी शिक्षा को रोजगारपरक बनाया जा रहा है। कुछ प्रान्तों ने तो विगत वर्षों से अपने यहां के विद्यालयों और महाविद्यालयों में इसकी व्यवस्था भी कर ली है। आज दस जमा दो की शिक्षा-पद्धति में इस योजना को अपनाया जा रहा है। आज इसको तीव्र गति प्रदान करने की आवश्यकता है। वैसे विज्ञान विषय को इसमें दसवीं कक्षा तक के विद्यार्थियों के अध्ययन के लिये अनिवार्य बनाया गया है-जो शुभ है। ऐसा होने से शिक्षा का अधुरापन कम हो सकेगा, इसमें सन्देह नहीं। विद्यार्थी रोजगार की तलाश में दर-द भटकता नहीं फिरेगा और विज्ञान उसके तकनीकी ज्ञान में सहायक सिद्ध होगा, जिससे उसकी रोजगार की सम्भावनाएँ और भी बढ़ जाएंगी। वास्तव में शिक्षा-क्षेत्र में विवेकशीलता एवं नैतिकता हेतु सामान्य लक्षण, वर्तमान आवश्यकता को देखते हुए श्रेयस्कर है।

कुछ राजनैतिक दल तथा जातीय संगठन भी अपने गलित स्वार्थ, अन्ध साम्प्रदायिकता एवं

कठोर कट्टरवादिता जैसे दूषणों को लेकर चलते हैं। वे बच्चों को कठपुतली बनाकर अपने संकेतों पर, अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु मनवांछित रूप में नचाते हैं।

अतः आज समाज में घुन की भांति लगे भ्रष्टाचार के नानाविध रूपों की निर्मूल करने के लिए क्रान्ति का लाया जाना अपेक्षित है। बच्चा तभी अनैतिकता की दल-दल में फंसने से बच सकता है।

दृश्य-श्रव्य उपकरणों, जैसे-सिनेमा, रेडियो, वीडियो, दूरदर्शन, नाटक आदि भी बच्चों में अनैतिकता को प्रश्रय देते हैं। इनके माध्यम से ऐसे चलचित्रों, गानों और कथा-कहानियों, संवादों को प्रसारित, प्रदर्शित किया जाता है, जिनका दुष्प्रभाव बच्चों के अपरिवक्व मन-मस्तिष्क पर पड़ता है और बच्चा पथभ्रष्ट हो जाता है।

इसके लिये यह आवश्यक होगा कि बच्चों की मानसिकता को ध्यान में रख कर चलचित्रों, गानों, कथा- कहानियों, संवादों आदि की रचना की जाए, जिससे कि बच्चा एक आदर्श ग्रहण कर सकें और देश के लिए एक उत्तम नागरिक सिद्ध हो सकें।

यदि बच्चे की संगति अच्छी होती है तो वह अच्छी-अच्छी बातें ही ग्रहण करेगा। और यदि कहीं वह कुसंगति में पड़ गया तो समझो उसका सर्वनाश ही हो गया। क्योंकि कुसंगति तो बच्चे को अनैतिक बनाकर उसकी पाशविक प्रवृत्तियों को ही जगाती है।

इसलिए यह परम आवश्यक है कि बच्चे को कुसंगतियों को हानियों को प्रेमपूर्वक समझा कर उसे सुसंगति में विचरने के सुअवसर प्रदान किये जाने चाहिए। क्योंकि मनुष्य एकान्त में तो ज्ञान प्राप्त करता है और नैतिकता सुसंगति में ही प्राप्त करता है।

सदुपदेशकों का अभाव, धर्म में अरुचि, और भौतिकवादी विचारधारा की अनुदिन हो रही वृद्धि ने भी आज बच्चे को अनैतिकता के मार्ग पर धकेल दिया है।

इसके लिये सदुपदेशकों की व्यवस्था की जानी चाहिए। समय-समय पर विद्यालयों में, घरों में, जन-सभाओं आदि में निष्ठावान्, सच्चरित्र, धार्मिक सदुपदेशकों को आमन्त्रित किया जाना चाहिए।

आज अश्लील पुस्तकों की बाढ़-सी आई हुई है। आज का विद्यार्थी भी इन पुस्तकों से अछूता नही है। वह चोरी-छिपे इन अश्लील पुस्तकों को पढ़ते हुए देखा जा सकता है। उसको अनैतिक बनाने में इन पुस्तकों का भी बड़ा हाथ है।

अतः बच्चे को नैतिकता का पाठ पढ़ाने के लिए उत्तम पुस्तकों और सही पत्र-पत्रिकाओं की व्यवस्था घरों तथा विद्यालयों में मुख्य रूप से की जानी चाहिए। विद्यालयों में इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु वहां के पुस्तकालयों का सही अर्थों में उपयोग किया जाना चाहिए। क्योंकि पुस्तकें सच्ची मित्र, मार्गदर्शक और ज्ञान का भंडार होती हैं। अच्छी पुस्तकें पढ़ने पर बच्चा स्वयमेव नैतिक बनता जाएगा। इस संदर्भ में 'रॉस' का शिक्षा को 'नैतिक शिक्षा' का पर्याय मानने सम्बन्धी यह कथन समीचीन ही है-

"Education mist have the foundation of religion in order to save us from the darkness

of the world."

अर्थात्–शिक्षा की नींव नैतिकता पर आधारित होनी ही चाहिए, जिससे कि वह हमें सांसारिक दूषणों (अंधेरों) से बचा सके।

और भी ऐसे तत्व खोजे जा सकते हैं, जिनके कारण बच्चे में अनैतिकता के बीज पनपने लगते हैं।

कुछ लोग विद्यालयों में धार्मिकता तथा नैतिक शिक्षा देने का विरोध करते हैं। उनका कहना है कि भारत एक धर्म–निरपेक्ष राज्य है। यहाँ हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी, यहूदी तथा अन्य जातियों के लोग बसते हैं और उनके बच्चे विद्यालयों में पढ़ते हैं। ऐसे में धार्मिक शिक्षा देने का प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि किसी धर्म के सिद्धान्त कुछ और हैं और किसी के कुछ और। इस दृष्टि से किसी धर्म की पूजापद्धति अथवा धर्म–ग्रन्थों को विद्यार्थियों पर थोपना सरासर अन्याय होगा। अन्य धर्म भी इसको गवारा नहीं करेंगे; और न ऐसा करने की अनुमति ही देंगे।

इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि– धर्म का अर्थ है–धारण करना। जैसे पहले भी बताया जा चुका है। जो–जो बातें अच्छी हों, सर्वहितकारी हों, सार्वभौमिक हों, जिन्हें सभी धर्म एक समान मानते हों, जिनमें संकोच न हो, और जो मानव तथा समाज की तात्कालिक समस्याओं को हल करने में सहयोगी हों, उन्हें धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा का विषय सहज ही बनाया जा सकता है। इसके एक ओर तो विद्यार्थी–वर्ग अनुशासित और संयमी जीवन के प्रति जागरूक होकर नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देगा और दूसरी ओर इन विभिन्न धर्मोंके प्रति उसके मन में निष्ठा पनपेगी। इसे हम सर्वधर्म–समन्वय की भावना कहेंगे।

आचार्य विनोबा भावे ने इस विषय में उचित ही कहा है–"आजकल सैक्युलर स्टेट के नाम से विद्यार्थियों को धार्मिक साहित्य सिखाया नहीं जाता। वास्तव में होना यह चाहिए कि सब धर्मों का सार सिखाया जाए। हिन्दू, बौद्ध, जैन, ख्रीष्ट, मुसलमान, पारसी, सिख आदि सब धर्मों का सार निकाल कर, उनमें जो समान अंश हैं, सबकी श्रद्धा दृढ़ करने वाले अंश हैं, वह सिखाना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं हुआ और शिक्षा–पद्धति में सभी धर्मों को टाला गया। इस पद्धति में सुधार होगा, तभी कल्याण होगा।"

अतएव धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा किसी एक धर्म अथवा जाति से सम्बन्धित न होकर सभी धर्म एवं जातियों से सम्बन्धित होनी चाहिए। सभी धर्मों एवं जातियों के विद्यार्थियों में सर्व–धर्म–समन्वय की भावना के साथ–साथ मानव–धर्म के गुण धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा से ही विकसित हो सकते हैं।

अन्त में प्रकृति–प्रेमी, मानव–सौन्दर्य के पुजारी कविवर सुमित्रानन्दन पंत के शब्दों में आबाल–वृद्धवनिता –सभी के लिए यही मंगलमयी, हार्दिक शुभकामना है–

आज त्याग, तप, संयम साधन,
सार्थक हों पूजन, आराधन,
नीरस दर्शनीय मानव वपु पाकर,
मुग्ध करे भव !

सत्यार्थ प्रकाश में नीति तत्त्व

लेखकः डॉ० त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा, होश्यारपुर (पंजाब)

नीति-तत्त्वों में प्रमुख तत्त्व सत्य है। सत्य के प्रति महर्षि दयानन्द का विशेष आग्रह था। इसी कारण उन्होंने अपने ग्रन्थ का नाम 'सत्यार्थ प्रकाश' रखा। आर्य-समाज के प्रमुख दस नियम बनाते समय भी सत्य के महत्व को दृष्टिविगत नहीं किया। प्रथम और तृतीय नियमों में सत्यादि विद्याओं में आदिमूल परमेश्वर और वेद को माना है। सत्य प्रतिपादक वेद को पढ़ना-पढ़ाना धर्म माना गया है। ताकि जनमात्र वेदाध्ययन द्वारा सत्याचरण को अपनाएं। चतुर्थ नियम जो सारे का सारा धर्म पर ही आधृत है।

सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखते हैं-

'मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है।' अर्थात् जो सत्य है उसे सत्य और जो मिथ्या है उसे मिथ्या ही प्रतिपादन करना नैतिकता है। झूठ को सच और सच को झूठ सिद्ध करना नीति के विपरीत है।

सत्य पालन को ही स्वामी जी ने मानव जाति के उत्थान या कल्याण का कारण माना है। वे लिखते हैं-'जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो।' सत्य-असत्य को मनुष्य जानकर सत्य को ग्रहण करें और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्याचरण के बिना मनुष्य-जाति की उन्नति का अन्य कोई भी कारण नहीं।

स्वामी जी ने सदा सत्य की विजय और असत्य की पराजय की कामना की है। यथा-

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।

अर्थात् सत्य की सदा जीत होती है और असत्य की पराजय। सत्याचरण ही से विद्वानों का मार्ग प्रशस्त होता है। इसी दृढ़ निश्चय से आप्त लोग परोपकार करने से भले ही उदासीन हो जाएं पर सत्याचरण से वे कभी नहीं चूकते।

नैतिकता का एक प्रमुख तत्त्व अहिंसा भी है। स्वामी जी ने अपने ग्रन्थ की भूमिका में ही आगे अहिंसा के ऊपर भी पर्याप्त बल दिया है-"जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों को दुःख देते और मार डालते हैं, जब मनुष्य शरीर पाकर वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभावयुक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है, वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर परहानिमात्र करता रहता है, वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।"

इन्हीं उक्त तथ्यों से प्रतीत होता है कि महात्मा गांधी जी ने सत्य, अहिंसा एवं स्वदेशी के आग्रह को स्वामी जी से ही ग्रहण किया हो।

द्वितीय समुल्लास में, स्वामी जी ने सत्य-प्रतिज्ञा पर बहुत बल दिया है। उनका कहना है कि

मनुष्य को सदा सत्य-प्रतिज्ञा होना चाहिए-

"जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा की हो उसे वैसे ही पूरी करनी चाहिए। जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'मैं तुम को व तुम मुझ से अमुक समय में मिलूंगा व मिलना अथवा अमुक वस्तु अमुक समय में तुम को मैं दूंगा।' इसको वैसा ही पूरी करें, नहीं तो उसकी प्रतीति (विश्वास) कोई भी नहीं करेगा। इसलिए सदा सत्य प्रतिज्ञायुक्त सबको होना चाहिए।"

स्वामी जी ने अभिमान को मनुष्य के लिए सर्वदा घातक माना है और इसे कभी न करने की सलाह दी है-"किसी को अभिमान करना योग्य नहीं क्योंकि 'अभिमानः श्रियं हन्ति', यह विदुरनीति का वचन है, जो अभिमान अर्थात् अहंकार है, वह सब शोभा और लक्ष्मी का नाश कर देता है, इसलिए अभिमान न करना चाहिए।"

छल, कपट व कृतघ्नता को भी स्वामी जी ने मनुष्य के लिए हानिकारक बतलाया है-"छल, कपट व कृतघ्नता से अपना ही हृदय द्रवित होता है तो दूसरे की क्या कथा करनी चाहिए? छल और कपट उसको कहते हैं जो भीतर और बाहर और दूसरे को मोह में डाल, और दूसरे ही हानि पर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना। कृतघ्नता उसको कहते हैं कि किसी के किए उपकार को न मानना।"

स्वामी जी के अनुसार मनुष्य को शान्त और मधुर वचन बोलने चाहिए और सदा उतना ही बोलना चाहिए जितने की आवश्यकता हो-"क्रोध आदि दोष और कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोलें और बकवाद न करे। जितना बोलना चाहिए उससे न्यून न अधिक न बोले।"

स्वामी जी के अनुसार सदा बड़ों का मान करना चाहिए, यही नैतिकता की अपेक्षा है। कहते हैं-

"बड़ों को मान दे, उनके सामने उठकर, जा के उच्चासन पर बिठावें, प्रथम नमस्ते करे। उनके सामने उच्चासन पर न बैठे। अपने माता-पिता और आचार्य को तन-मन-धन आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों से प्रीतिपूर्वक सेवा करें।"

स्वामी जी के अनुसार संसार में जितने भी दान हैं, उसमें से सबसे श्रेष्ठ वेद-विद्या का दान है-

सर्वेषाम् दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते। -(मनु0 4.233)

इसीलिए स्वामी जी ने शिक्षा के महत्व के सम्बन्ध में कहा है-'राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रख के विद्वान् कराना। जो कोई इस आज्ञा को न माने उसके माता-पिता को दण्ड देना।"

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्। -(मनु0 7. 152)

"वे माता-पिता अपनी सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई, वे विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं, जैसे हंसों के बीच में बगुला।"

माता शत्रुः पिता वैरी, येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये, हंस मध्ये बको यथा।। -(चाण0 नी0 2. 11)

स्वामी जी के अनुसार–"जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हो उनसे बच्चों को शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों, वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं। आचार्य अपने शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहें कि जो–जो हमारे धर्म–युक्त कार्य हैं, उन–उन का ग्रहण करो और जो–जो दुष्ट कर्म हैं, उनका त्याग कर दिया करें।"

यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि। –(तैत्तिरीय उप0 1. 11)

ऐसा करने से बाल एवं युवक–वर्ग में नैतिकता का स्वयमेव विकास सम्भव है।

स्वामी जी के मत में जैसा व्यवहार हम दूसरों से चाहते हैं, वैसा ही व्यवहार हमें भी दूसरों के साथ करना चाहिए, यही नीति सम्मत है–

"जैसे अपने को सुख प्रिय तथा दुःख अप्रिय है, वैसे ही सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दुःख व सुख दूंगा तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा।"

मधुर–भाषण भी नैतिकता का तत्त्व है। स्वामी जी के अनुसार सदा सबके साथ हितकारी वचन बोलने चाहिए। बिना अपराध किसी के साथ विरोध व विवाद नहीं करना चाहिए।

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह।। –(मनु0 4. 139)

स्वामी जी के अनुसार स्वाधीन कर्मों पर अधिक बल देना चाहिए–"जो–जो पराधीन कर्म हो, उस–उस का प्रयत्न से त्याग, और जो–जो स्वाधीन कर्म ही, उस–उस का प्रयत्न के साथ सेवन करे। क्योंकि जो–जो पराधीनता है, वह–वह सब दुःख और जो–जो स्वाधीनता है, वह–वह सब सुख।"

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।
यद्यदात्मवशं तु स्यात् तत्तत्सेवेत यत्नतः।। –(मनु0 4. 156)

दम्पत्ति में परस्पर प्रेम, करुणा, सहानुभूति का होना भी नैतिकता का तत्व है। गृहस्थ के सम्बन्ध में स्वामी जी का मत है–"जिस कुल में भार्य से भर्त्ता और पति से पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती है, उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जहाँ कलह होता है, वहां दौर्भाग्य और दारिद्रय स्थिर रहता है।"

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्ता भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुल नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।। –(मनु0 3. 60)

राजा और प्रजा के सम्बन्ध में स्वामी जी का मत है कि राजा को प्रजा का पालन हर प्रकार से करना चाहिए। राजा और प्रजा का सम्बन्ध पिता–पुत्र का होता है–"जैसे प्राणियों के प्राण शरीरों को कृशित करने से क्षीण हो जाते हैं, वैसे ही प्रजाओं को दुर्बल करने से राजाओं के प्राण अर्थात् बल आदि

से सैन्यबल, मन्त्रिबल, मित्रबल सहित नष्ट हो जाते हैं।"

शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा।
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात्।। –(मनु0 7. 112)

जैसे धान निकालने वाला धान का छिलका निकालता है, परन्तु धान को टूटने नहीं देता वैसे राजा भी कर तो ग्रहण करे परन्तु इतना ही जिससे प्रजा पीड़ित न हो तथा जैसे जोंक, बछड़ा और भौरा थोड़ा–थोड़ा ही भोग्य पदार्थ ग्रहण करते हैं वैसे राजा भी वार्षिक कर के रूप में लोगों की आय का थोड़ा–सा भाग ही ग्रहण करे, सारा नहीं।

यथाऽल्पाऽल्पमदन्त्याद्यं वार्योको वत्स–षट्पदाः।
तथाऽल्पाऽल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः।। –(मनु0 7.129)

राजा सदा इस बात को दृढ़ रखे कि कभी बुद्धिमान्, कुलीन, शूरवीर, चतुर, दाता, किए हुए को जानने हारे और धैर्यवान् पुरुष को शत्रु न बनावे क्योंकि जो ऐसे को शत्रु बनाता है, वह दुःख पाता है–

प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च।
कृतज्ञं धृमिन्तंच कष्टमाहुररिं बुधाः।। –(मनु0 7. 210)

राजा द्वारा प्रजा के साथ यथायोग्य व्यवहार करना नैतिकता–सम्भव है। स्वामी जी लिखते हैं– "जो राजा दण्ड देने योग्य को छोड़ देता और जिसको दण्ड देना न चाहिए उसको दण्ड देता है, वह जीता हुआ बड़ी निन्दा को और मृत्यु के बाद दुःख (नरक) को प्राप्त होता है"–

अदण्ड्यान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति।। –(मनु0 8. 128)

स्वामी जी के अनुसार, राजा न्यायासन पर बैठ कर सदा न्याय करे; उस समय पिता, आचार्य, मित्र, स्त्री, पुत्र और पुरोहित से भी पक्षपात न करे–

पिताचार्य्यः सुहृन्माता भार्य्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति।। –(मनु0 8. 335)

'यथा राजा तथा प्रजा', इस चाणक्य नीति के वचन के अनुसार राजा के लिए अति उचित है कि वह कभी दुष्ट आचार न करे, बल्कि सदा धर्म और न्याय के साथ वर्ताव करके सब के लिए सुधार का दृष्टान्त बने।

स्वामी जी के अनुसार, जब कोई व्यक्ति सभा में अन्याय होते हुए देखकर भी चुप रहे, वह महापापी होता है–

अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी। –(मनु0 8. 8)

कौन ?

रचियताः संसारचन्द 'प्रभाकर', कांगड़ा (हि. प्र.)

कौन बिछाता सागर तल से मणियां ला कर तट पर,
कौन सजाता तारक-मण्डल इस धरती की छत पर ?
किस के बल पर विटप खड़े हैं मौन तपस्वी बन कर,
कैसे आती मन्द पवन यह तूफानों से छल कर।

समय नियत है उदय अस्त का जीवन और मरण का,
नाप तोल है पूरा कैसे अस्थि शिखा चरण का।
धरती को है कौन सींचता बंजर कौन बनाता,
कलिकाओं को स्वयं सजा कर खंजर कौन चलाता॥

बचपन तथा जवानी क्या है और बुढ़ापा सारे,
भेद नहीं है पार नहीं है अगम निगम सब हारे।
भूधर थामे धरा खड़ी है नदियां कल-कल बहतीं,
फेन उगलती सिंधु लहरियां न जाने क्या कहतीं॥

खुला गगन है खड़ा कहां तक घटा टोप सा पहले,
हिम-कण सुन्दर नित्य सजाते किस के अद्‌भुत गहने।
धरती का तल किसने देखा, क्षितिज पार फिर क्या है,
कौन जानता किसके मन में कितना प्रेम दया है॥

कब से भूधर अटल खड़े हैं अनुमानित सब बातें,
नदियां झरने कब से बहते बीते दिन और रातें।
कब से भानु तेज उगलता और चान्द है चढ़ता,
अग्नि वायु जल पृथ्वी और अम्बर घटता बढ़ता॥

नियति भंग होने से किसकी भ्रू-भृकुटी चढ़ जाती,
पलड़ा ऊपर नीचे जाता घटती लौ बढ़ जाती।

कौन प्रलय और सृजन कराता नाओ कौन बचाता,
कंकड़ पत्थर पेड़ धरा पर उपवन कौन सजाता॥

धर्म भेद किंचित न जाने रूप अनूप बनाता,
निराकार है निराधार है वह सच्चा निर्माता।
मानव भटक रहा धर्मों में मानवता न जाने,
रूप सी का धर्म वही है उसको न पहचाने॥

सम दृष्टि से सब को देखे समता भाव वही है,
खग-वृन्दों में कूजन उसकी वही लगाव सही है।
जप तप योग उसी में रहते आदि अन्त तक एक,
वही ज्योति है वही पतंगा करता एक अनेक॥

❁❁❁

नैतिकता के स्वर

रचियता: अशोक कुमार जसवाल, होश्यारपुर (पंजाब)

जीवन के मरुस्थल को दे दो, स्नेह-सुधा की निर्मल धार।
मन के मुरझाये मधुवन में, से आओ तुम पुनः बहार॥

तिनके आशा के जोड़ो, बस जाये फिर उजड़ा नीड़।
पाल धैर्य का बान्धो, डुबो न पाये तूफानों को भीड़॥

निशी बीते शंकाओं की, चमके विवेक का नया प्रभात।
करें सत्य, शिव, सुन्दर मिलकर, नवजीवन का नव शृंगार॥

हो चहुँ ओर प्रकाश प्रेम का, जलता रहे, स्नेह का दीप।
स्वाति बूँद ममता की डाली, कुण्ठित उर पा जायें प्राण॥

मनुज मनुज निर्भ्रान्त हो सके, बाँटो सबको ऐसा ज्ञान।
संवेदन का अमृत पिलाओ, दो विषाद से सबको त्राण॥

❁❁❁

रिवाल्वर से सोती हुई माँ और अपने 3 वर्ष के बड़े भाई को गोली मारकर हत्या कर दी, पिता ने बेटी को डांटा उसने फांसी लगा ली। बेटा फेल हो गया तो रेल से कूदकर आत्महत्या कर ली। पत्नी ने प्रेमी संग मिलकर पति की हत्या कर दी। पति ने गर्ल फ्रेन्ड के साथ मिलकर चुपचाप घर से चार सदस्यों को विष देकर मारा, बहू ने सास को घसीट-घसीट कर मारा, दरिन्दों ने मासूम बच्ची से बलात्कार कर उसकी हत्या कर दी, आई. एस. ने आत्महत्या की, इन्सपेक्टर ने अपनी कनपटी में गोली मार आत्महत्या की, डाक्टर ने गर्लफ्रेण्ड की आगरा में हत्या की इत्यादि समाचारों को पढ़कर तथा समाज की अवस्था देखकर ऐसा लगता है अब कहीं समाज रहा ही नहीं है जंगलराज है। चारों ओर गदर के हालात् बन रहे हैं चारों ओर चोरी, डकैती, रिश्वतखोरी आदि का खुल्लम खुल्ला बोल-वाला है। इस सारी अव्यवस्था का एकमात्र कारण तप हीन जीवन बनाना है। ईश्वरीय व्यवस्था में तप हीन जीवन पाप है और पाप का परिणाम घोर दुःख है। पर आश्चर्य आज के मानव को देखकर हो रहा है। आज मानव समाज तप को हेयदृष्टि से देखता है। अपना कार्य स्वयं करना अपनी प्रतिष्ठा के विपरीत मानता है और अपनी तप द्वारा अर्जित सम्पत्ति पर सन्तोष करना मूर्खता मानता है। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि मुफ्त का माल खाकर बच्चे भी भ्रष्ट हो गये और उनकी बल बुद्धि सब नष्ट हो गयी। वे माता-पिता को मूर्ख समझने लगे उनकी धन की धूल उड़ा दी। गुप्त जी ने ठीक ही लिखा है-

जब याद आती है बड़ो के उन सपूतों की कथा।
उनके सखा संगी विदूषक और दूतों की कथा।
तब निकल पड़ते हैं हृदय से वचन ऐसे दुःख भरे।
होवे न ऐसे पुत्र चाहे हो कुल क्षय हे हरे।
यों तो सभी का बीतता है बाल्यकाल विनोद में।
वे किन्तु सोते-जागते रहते सदा हैं गोद में।
इस भांति पल कर प्यार में जब ये सपूत बड़े हुए।
उत्पात उनके साथ ही घर में अनेक खड़े हुए।
आया जहाँ यौवन उन्हें बस भूत माना चढ़ गया।
जीवन सफल करनार्थ अब उनमें अपव्यय बढ़ गया।
सौन्दर्य के शशि लोक में सब ओर उनके चर उड़े।
गुण्डे पसीने की जगह लोहू बहाने को जुड़े।
रहती उन्हीं के ठाठ की है धूम मेलों में सदा।
आगे मिलेंगे वे थियेटर और खेलों में सदा।
वे नाच-मुजरे और जलसे हैं उन्हीं लग रहे।
हैं यार लोगों के उन्हीं से भाग्य जग में जग रहे।
यों कुछ दिनों घर फूंक कौतुक देखकर नंगे हुए।
फिर क्या हुआ? सरकार थे जो दीन भिखमंगे हुए।
हंसने लगा संसार उन पर यार छोड़ गये सभी।
लुच्चे लफंगे भी किसी मीत होते हैं कभी।

इन सभी बातों की वास्तविकता का विचार कर हमारे सभी प्रबुद्ध पाठकों से निवेदन है अपने जीवन को तपस्वी बनायें मुफ्तखोरी के स्वभाव को नमस्ते कह दें और दूसरों को भी समझा दें कि प्रकृति मुफ्तखोरों का सर्वनाश कर देती है। और तप करने वालों का सब ओर से विकास कर स्वर्ग प्राप्त करा देती है। अपने हाथ में है कि सर्वनाश चाहते हैं या सर्वविकास चाहते हैं स्वयं चयन करें।

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (सजिल्द)	220.00	भ्रांति दर्शन	20.00	गायत्री गौरव	5.00
शुद्ध रामायण (अजिल्द)	170.00	शान्ता	20.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
शंकर सर्वस्व	120.00	संध्या रहस्य	20.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	गीता तत्व दर्शन	20.00	जीजा साले की बातें	5.00
शुद्ध कृष्णायण	80.00	गृहस्थ जीवन रहस्य	20.00	विषपान और अमृत दान	5.00
शुद्ध हनुमच्चरित	60.00	श्रीमद् भगवत गीता	20.00	पंचाग के गुलाम	5.00
नित्य कर्म विधि	45.00	आर्यों की दिनचर्या	20.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियां (प्रेस में)	
विदुर नीति	40.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00	नमस्ते ही क्यों	10.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00	महिला गीतांजलि	15.00
चाणक्य नीति	40.00	बाल मनुस्मृति	12.00	पुराणों के कृष्ण	12.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	ओंकार उपासना	12.00	भागवत के नमकीन चुटकुले	8.00
दो मित्रों की बातें	35.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	15.00	आदर्श पत्नी	10.00
वेद प्रभा	30.00	दादी पोती की बातें	10.00	मानव तू मानव बन	8.00
शान्ति कथा	30.00	दण्डी जी का जीवन पथ	10.00	ऋषि गाथा	4.00
भारत और मूर्ति पूजा	30.00	क्या भूत होते हैं (प्रेस में)		सर्प विष उपचार	4.00
यज्ञमय जीवन	30.00	महाभारत के कृष्ण	15.00	चूहे की कहानी	4.00
दो बहिनों की बातें	30.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00	उपासना के लाभ	4.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	सच्चे गुच्छे	8.00	भगवान के एजेन्ट (प्रेस में)	
चार मित्रों की बातें	20.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00	दयानन्द की दया	3.00
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00	शंकराचार्य और मूर्ति पूजा	3.00
मील का पत्थर	20.00			शांति पथ	2.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2020 के लिये वार्षिक शुल्क 150/– रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/– भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक–पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

.....

.....

.....

.....

..... पिन कोड .....

पत्र व्यवहार का पता :–
व्यवस्थापक – कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर– गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबा. 9759804182

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए मित्तल कम्प्यूटर प्रिंटर्स, वृन्दावन रोड, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित

Yogendra # 9927136600